साहित्यिकों से

विनोबा

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (म० प्र०)

दूसरी बार : १०,०००
कुल छपी प्रतियाँ २०,०००
मार्च, १९५६
मूल्य आठ आना

मुद्रक :
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस,
बनारस

हिन्दी साहित्यिकों की अपील

आचार्य सन्त श्री विनोबा भावे ने जो सर्वोदय-यात्रा आरम्भ की है, वह उसी अहिंसक क्रान्ति का स्वाभाविक प्रसार है, जिसका सूत्रपात गांधीजी ने किया था, तथा जिसके द्वारा हमारा देश राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हुआ। किन्तु नूतन समाज की रचना किस प्रकार से हो, यह समस्या देश के सामने अब भी अपना समाधान खोज रही है। समता और सामाजिक न्याय, इस भावी समाज के लक्ष्य हैं, किन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यदि हम हिंसक साधनों का आश्रय लेते हैं, तो हमारी वह अहिंसक परम्परा विनष्ट हो जायगी जो हमें गांधीजी से मिली है तथा जो भारत की सनातन संस्कृति का सार है। इसके विपरीत, यदि हम अपना मार्ग निश्चित रूप से निर्धारित करके उस पर अविलम्ब ही उत्साह से चलना आरम्भ नहीं करते हैं, तो हम अपनी निष्क्रियता और असावधानता के फलस्वरूप हिंसा के आवर्तों में भी ग्रस्त हो जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में विनोबाजी ने जो प्रयास आरम्भ किया है, उसे हम आशा और उत्साह से देखते हैं तथा हमें लगता है कि यही वह मार्ग है, जिसे हमें तुरन्त अपना लेना चाहिए, जिसमें से आवश्यकतानुसार हमें नये-नये मार्ग मिलते जायँगे।

अतएव हमारी प्रार्थना है कि देश की जनता विनोबाजी के महान प्रयास में हार्दिक और सक्रिय सहयोग प्रदान करे, जिससे अहिंसक क्रान्ति की सभी मंजिलें हम शान्तिपूर्वक तय कर सकें, तथा जिस प्रकार हमने अहिंसक उपायों के द्वारा अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करके सभ्यता के सामने एक नया आदर्श रखा है, उसी प्रकार समत्व और सामाजिक न्याय पर आधारित नये समाज की रचना करके हम विश्व को यह भी बतला सकते हैं कि जिस समत्व की स्थापना के लिए रक्तपात की प्रक्रिया आवश्यक समझी जाती है, उसकी उपलब्धि हम शान्ति, प्रेम और अहिंसा से भी कर सकते हैं और यही मार्ग अधिक मानवीय और श्रेष्ठ है।

विशेषतः अपने पत्रकार बन्धुओं से हमारी प्रार्थना है कि वे लेखों, संवादों और टिप्पणियों आदि के द्वारा देश में वह वातावरण उत्पन्न करने में सहायक हों, जो इस अहिंसक क्रान्ति की प्रगति और सफलता के लिए आवश्यक है।

विनीत

मैथिलीशरण गुप्त	सियारामशरण गुप्त
महादेवी वर्मा	वृन्दावनलाल वर्मा
रामधारी सिंह "दिनकर"	गंगाप्रसाद पाण्डेय
राय कृष्णदास	बाबा राघवदास

अनुक्रम

साहित्यिकों से

वागीश्वर वाग्दान दें : १ :

आप सब लोग साहित्यिकों के तौर पर यहाँ आये हैं। यद्यपि मुझे साहित्य से प्रेम है, तथापि मेरी गिनती साहित्यिकों में नहीं। किन्तु साहित्य का जो अर्थ मैं समझा हूँ, वह आपको बता देता हूँ।

'साहित्य' शब्द ही यह बतलाता है कि वह निरपेक्ष नहीं है। वह किसीके सहित जानेवाली चीज है। साहित्य तो जीवननिष्ठा के प्रकाशनार्थ होता है। जीवननिष्ठा और साहित्य, दोनों एकरूप होने चाहिए। वाणी और अर्थ की उपमा कालिदास ने पार्वती और परमेश्वर से दी है। अर्थ याने जीवन और वाणी याने साहित्य। ये दोनों एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकते। वाणी के कारण जीवन की प्रभा फैलती है। उनका संबंध सूर्य और किरण जैसा है। दोनों अभिन्न हैं, फिर भी प्रचारक का काम किरण ही करती है। साहित्य जीवन की प्रभा के रूप में प्रकट होता है।

राष्ट्र के साथ-साथ साहित्य भी उन्नति या अवनति करता है। उसी प्रकार साहित्य जीवन को भी उन्नत या अवनत कर सकता है। जीवन और साहित्य को उन्नत करनेवाले दो प्रकार के उदाहरण हम लोगों ने देखे हैं। पहले प्रकार का उदाहरण गांधीजी का है। गांधीजी वैसे कोई साहित्यिक नहीं माने जाते थे, फिर भी उनके प्रभाव के कारण हिन्दुस्तान की हर भाषा का साहित्य उन्नत हुआ है।

दूसरे प्रकार का उदाहरण है, रवीन्द्रनाथ ठाकुर का। उनकी सद्भावना और विश्ववृत्ति के कारण समाज ऊँचा चढ़ा है। कवि जब महात्मा होते हैं, तब उनका असर जीवन पर पड़ता है।

साहित्य और सत्य एकत्र

कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं, जहाँ साहित्य और सत्य, दोनों एकत्र दीख पड़ते हैं, जैसे महर्षि व्यास। वे शब्द-निष्णात भी थे, व्यवहारवेत्ता भी थे, कर्मयोगी भी थे और समाज पर जब कभी आपत्ति आ जाती थी, तो वहाँ भी उपस्थित हो जाते थे। इस प्रकार के दूसरे भी कुछ उदाहरण मिल सकते हैं। शंकराचार्य वैसे ही थे। उन्होंने कई प्रकार के ग्रन्थ लिखे। उनमें से कुछ तत्त्वज्ञान के हैं, कुछ आम जनता के लिए हैं तथा कुछ भक्ति-पूर्ण हैं। शंकर एक महान् कर्मयोगी भी थे।

राम और वाल्मीकि

लेकिन एक ही व्यक्ति में दोनों गुण एकत्र हों, यह एक विशेष ईश्वरीय प्रसाद है। आम तौर पर एक ही गुणवाले लोग अधिक होते हैं। ये यदि एक-दूसरे के पोषक हों, तो वह बहुत बड़ी बात होगी। वाल्मीकि ने रामायण लिखी। रामचन्द्र न होते, तो वाल्मीकि न होते और वाल्मीकि न होते, तो रामचन्द्र न होते।

पावन शब्द

आपसे मैं आशा यह करता हूँ कि आप ऐसे शब्द-प्रयोग कीजिये कि जो पावन हों, मंगल हों, शान्तिदायी हों, जिनसे समाज को तुष्टि और पुष्टि भी मिले। आप सोचेंगे, तो आपके ध्यान में यह चीज आ जायगी कि जो आदमी तपस्वी नहीं है, चिन्तनशील नहीं है, उसके हृदय में महान् शब्द स्फुरित ही नहीं होते। ऋषि भले ही बड़ा कर्मयोगी न हो, तथापि यदि वह जीवन-निष्ठ होगा, तो उसके शब्द प्रेरणा देंगे। कभी-कभी सामान्य लोगों को भी महान् शब्द स्फुरते हैं, लेकिन वे उनके हृदय में टिकते नहीं। पर ऋषियों के मुख से प्रेरित शब्दों की गंगोत्तरी होती है। उससे गंगा बनती है। सामान्य लोगों का छोटा-सा झरना मात्र रह जाता है।

विविधता रहे, भेद मिटें

हम तो यह चाहते है कि सारा समाज सौहार्द से भरा हो। मेरा काम तो उसमें निमित्तमात्र है। समाज में तरह-तरह के भेद है। लेकिन लोगो मे अगर सौहार्द होगा, तो उससे विविधता मे भी एक सुरीला सगीत पैदा होगा। मै भेदो के विरुद्ध तो प्रचार कर रहा हूँ, लेकिन विविधता को मिटाना नहीं चाहता। विविधता अगर मिट जायगी, तो जीवन ही नीरस बन जायगा। मै 'वर्ग विरोध', 'सघर्ष' आदि शब्दों से कुछ अलग तरह के शब्द निकाल रहा हूँ। परमेश्वर ने जो पचमहाभूत, पचतत्त्व बनाये है, उन्हे मै एक समझता हूँ। उनमे मुझे कोई वर्ग नहीं दीखता।

भूदान की महिमा

मुझे सौहार्द की खोज मे 'भूदान' शब्द हाथ लगा है और वह अच्छा चल रहा है। अभी एक भाई ने कहा कि 'भूदान' से हरएक के दिल मे सहानुभूति पेदा होती है। परमेश्वर की कृपा से मुझे शब्द ही ऐसा मिल गया कि जो बहुतों को समान भूमिका पर ला सका है। उससे शान्तिवादी और क्रान्तिवादी, दोनों प्रकार के लोग इकट्ठे हो रहे है। जहाँ काली जमुना और शुभ्र गगा एकत्र होती है, वहाँ प्रयाग का सगम होता है। भूदान-यज्ञ भी प्रयाग के समान सगमात्मक कार्यक्रम बन रहा है। उसमे प्राचीन और अर्वाचीन सभ्यता का भी सगम है।

मै आपसे कह रहा हूँ कि आप मुझे इस काम मे मदद दीजिये। आपमें से किसीके पास अगर थोडी भी जमीन हो, तो उसमें से कुछ हिस्सा मुझे दीजिये। मै तो लेने को निकला हूँ। यह सारा नया सिलसिला है। आज जब कि हम आम तौर पर लेने की बातें सुनते है, ऐसे वक्त मे देने की बातें सुना रहा हूँ।

वाग्दान दीजिये

मैने 'विदर्भ साहित्य-सम्मेलन' को सदेसा दिया था कि आप मुझे 'वाग्दान' दीजिये। वही माँग मै आपसे कर रहा हूँ। राष्ट्रकवि मैथिली शरणजी ने भूदान के बारे मे शक्तिशाली शब्दों का प्रयोग किया है। मेरी इस अपील के कारण और भी कई सहृदय कवियो को स्फूर्ति मिली है।

एक कवि जब कहता है—"भूमि दान-यज्ञ हम सफल बनायेंगे', तब इसका असर लोगों पर बहुत ही गहरा पडता है। लोग जब यह गाते है, तब स्पष्ट पता चलता है कि अब नवीन युग का उदय हो रहा है।

जगानेवाले शब्द

कुछ लोग सूर्योदय के कारण जागते हैं। कुछ लोग चिडियों के गाने से जागते है। उसी प्रकार लोगो को जगाने की शक्ति वाणी में, साहित्य म, सारस्वत मे है। उस शक्ति का उपयोग मै आपसे इस काम के लिए चाहता हूँ।

मै कमजोर औजार हू

मैने यह काम नम्रतापूर्वक शुरू किया है। मै यह नही मानता कि इस काम के लिए मुझसे अधिक शक्तिशाली वाहन दुनिया मे नही है। लेकिन ईश्वर की योजना कुछ ऐसी विचित्र और नाटकीय है कि उसने कृष्णावतार में गोपालो से काम लिया, रामावतार मे वानरो से काम लिया। उसी प्रकार वह मुझ जैसे तुच्छ लोगो से काम ले रहा है। वही मुझे शब्द शक्ति आदि देगा। मुझे इस बात का बहुत भान है कि मै इस काम के लिए बडा कमजोर औजार हूँ।

निरहंकार बनने की कोशिश

मैं यह नहीं मानता कि मैं अपनी योग्यता बदल सकूँगा। गधा अगर घोड़ा बनना चाहे, तो भी वह घोड़ा बन नहीं सकता। लेकिन एक बात मैं जानता हूँ कि अगर हम अहंकार छोड़ दें, तो हमारी नाचीज वस्तु भी शक्तिशाली बन जायगी। अगर हम अहंकारशून्य—बाँस की पोली नली की तरह—बन गये, तो परमेश्वर हमें लेगा और हमारी मुरली बनाकर उसे बजायेगा। यद्यपि निरहंकार बनना भी आसान काम नहीं है, तथापि शक्तिशाली बनने की अपेक्षा वह कम मुश्किल है। इसलिए मैंने तय किया है कि अहंकार को छोड़कर सबको परमेश्वर समझकर उनसे माँगूँगा।

मैं वागीशों से वाग्दान की माँग करता हूँ।*

◆ ◆ ◆

---

* 'राष्ट्रकवि परिषद्' काशी के सदस्यों के निमित्त काशी-विद्यापीठ में तारीख ३१-८-'५२ को किया गया प्रवचन।

चिंतन की एक शक्ति होती है, जो आत्मा की गहराई मे जाकर विश्व की सूक्ष्मता मे प्रवेश करके जीवन के सिद्धान्तो का शोध करती है। इस चिन्तन शक्ति के अभाव में समाज लूला बन जायगा, प्रगति रुक जायगी। भौतिक, वैज्ञानिक सशोधनो के लिए जिस प्रकार एकान्त चिंतन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक सशोधनो के लिए भी एकान्त-सेवन करना पडता है। ऐसे एकान्त से भी, जो ब्रह्मर्षि होते है, वे ससार को जीवन के तत्त्वज्ञान का चिंतनात्मक सार देते है, जिसमे जीवन की समस्याओ का हल रहता है।

समाज-सेवक : राजर्षि

दूसरी शक्ति सेवा की होती है। ब्रह्मर्षियो द्वारा प्राप्त चिंतन शक्ति के आधार पर समाज-सेवक लोक-सेवा मे रत रहते है, जिन्हें 'राजर्षि' कहते है। ऐसे सेवा करनेवाले सेवक समाज में न रहे, तो समाज का न केवल एक अग क्षीण हो जायगा, अपितु सारा समाज शुष्क हो जायगा।

इस तरह की समाज-सेवा करनेवाले विचारक समाज मे आवाज बुलन्द करते है। आन्दोलन की जरूरत हो, तो आन्दोलन खडा करते है। सगठन की जरूरत हो, तो सगठन बनाते है और अगर कभी लोगो की इच्छा से सत्ता ग्रहण करनी पडे, तो वैसा भी करते है। सत्ता ग्रहण करनेवाले ये लोग केवल सेवापरायण होते है। उनका कोई निजी स्वार्थ नही होता। इधर ब्रह्मर्षियो से वे विचार लेते है, उधर समाज-सेवा के क्षेत्र मे उन पर अमल करते है। पुरानी परिभाषा मे उन्हे 'राजर्षि' कहते है। ज्ञानपूर्वक, लोकरजन करते हुए लोक-सेवा में लगे हुए ये राजर्षि भी समाज की एक बडी शक्ति है।

निर्विकार, कुशल साहित्यिक : देवर्षि

तीसरी शक्ति साहित्य की है। जिन विचारो का ज्ञानियो को अनुभव होता है और जो आत्मा की गहराई में सिद्ध हो चुके होते है, उन विचारों को ऐसे चुने हुए शब्दो मे वे ज्ञानी प्रकट करते है। लोक-वाणी मे लोग उन्हे ग्रहण कर सकें, इसमें विचार को तो पहचानना पडता ही है, लेकिन उस विचार को वाणी का पहनाव पहनाना पडता है, वरना उचित शब्दो के अभाव में, प्रकाश के बजाय अप्रकाश भी हो सकता है। विचार तो अतर की गहराई मे होता है। जब उसे प्रकट करने जाते है, तब किसी एक शब्द का सहारा लेना पडता है। तब कुछ न्यूनता रहने का भाव होता है। दूसरा शब्द इस्तेमाल करें, तो कुछ अतिरिक्त भाव भी प्रकट हो सकता है। दोनो का प्रयोग करें, तो कोई विपरीत भाव भी प्रकट हो सकता है। इसलिए एक एक शब्द के बारे मे विवेक रखना पडता है, ताकि न न्यून-भाव प्रकट हो, न अतिरिक्त भाव, न विपरीत भाव। इन त्रिविध दोषो को टालकर विचार ठीक जैसे का तैसा प्रकट कर सकना चाहिए। यह तीसरी शक्ति (जनता के हृदयों तक विचार पहुँचाने की कुशलता की शक्ति) जिनमे होती है, उन्हे 'देवर्षि' कहते है।

ब्रह्मर्षियो की मिसाल देनी हो, तो हम वशिष्ठ-याज्ञवल्क्य के नाम ले सकते है। देवर्षियो मे नारद प्रसिद्ध ही है। राजर्षियो मे जनक महाराज सुप्रसिद्ध है, जो निरतर जन-सेवा मे लगे रहते थे। यह जरूरी नहीं है कि ऐसे लोग राजा ही हो। वे लोगो की सेवा में लीन है, इतना काफी है।

साहित्यकारों की साधना का पथ

इस तरह साहित्यकारो को लोक-हृदय के अनुकूल परिपूर्ण शब्द प्रकट करने की कुशलता साधनी चाहिए, अर्थात् सम्यक्, मधुर और कुशल,

तीनों तरह की वाणी बोलना, जिसमें न्यून, अतिरिक्त और विपरीत भाव न हो, एक महान् साधना है, जो उसीको सधती है, जिसके अपना निज का कोई विकार न हो। जो निज का विकार रखता हो, वह इस तरह की सम्यक् वाणी नहीं प्रकट कर सकता। थर्मामीटर को खुद का बुखार नहीं होता, इसलिए वह दूसरों का बुखार नाप सकता है। जिसको खुद का बुखार होता है, वह दूसरे का बुखार नहीं नाप सकता। इसी तरह जिसे खुद का कोई विकार न हो, वही दूसरों के लिए सम्यक् वाणी दे सकता है। जिसको खुद का विकार हो, वह निर्विकार विचार दे नहीं सकता।

तीन ऋषियों के तीन महान् लक्षण

नारद सबसे मिलते थे। देव, दानव, मानव, सब लोगों में हो आते थे। तो यह जो दिव्य-शक्ति वाक्-प्रचार की है, वह उसीको सधती है, जिसके पास उत्तम भक्ति हो। जैसे, ब्रह्मर्षि का लक्षण चिंतन-शक्ति है, राजर्षि का लक्षण उसकी निरहंकार सेवा-भावना है, वैसे ही देवर्षि का लक्षण है—सबके लिए प्रेम से भरा हुआ दिल। सबके विचारों को परखने के लिए बुद्धि की तटस्थता, वाणी की निर्विकारता और अपने बारे में निरहंकारिता जरूरी है। जहाँ सूक्ष्म बुद्धि से मनन करके वाणी का उपयोग किया जाता है, वहाँ सब तरह की शोभा, ऐश्वर्य, वैभव, सौंदर्य और आनन्द की वृद्धि होती है।

साहित्य की शक्ति का स्रोत

किन्तु जिस देश में लोग असम्यक् वाणी प्रकट करते हैं, जो जी में आया लिख डालते हैं, और चूंकि संपादक बने हैं, इसलिए किसी भी तरह का क्यों न हो, और प्रकाशन पसंद करते हैं। सारांश, किसी भी तरह काम करने की जिम्मेदारी पूरी कर देना पर्याप्त समझते हैं, समय और

स्थान की कोई भी पाबंदी महसूस नहीं करते। जिस देश में इस तरह वाणी का दुरुपयोग होता है, उस देश में लक्ष्मी स्वप्नवत् रहनेवाली है। अगर आपको मनन करने के लिए अवसर नहीं मिलता है, तो एक कालम कोरा रखा जा सकता है। यह तो मैंने सहज ही कहा। मै जानता हूँ कि हिंदुस्तान के अखबारवाले कुल मिलाकर काफी विवेकी हैं। हिंदुस्तान की तालीम की सतह ध्यान में रखते हुए यही कहना होगा कि हमारे अखबारवाले काफी संयम रखते हैं। संयम तो हमारी संस्कृति में ही पड़ा है। रघुवंश में बताया है कि सत्ययुक्त और मननयुक्त वाणी, जो नित्य मधुर, लोक-सुलभ, लोक-ग्राही हो, तो उससे एक बड़ी भारी शक्ति प्रकट हो सकती है।

हमारे यहाँ के साहित्य में जो सद्विचार जिस तरह प्रकट हुआ है, उस तरह शायद ही दूसरी जगह हुआ हो। इस देश में ब्रह्म-विचार का मनन हुआ, इस देश में जनक और अशोक जैसे महान् सेवक हुए, व्यास, वाल्मीकि और शुक जैसे अद्वितीय कवि और विचारक निर्मित हुए और उनकी परंपरा यहाँ चली। उनका संदेश अनेक भाषाओं में प्रकट हुआ। एक बहुत बड़ा आदर्श हमारे सामने उन्होंने रखा।

साहित्यिकों से निवेदन

आज हमारे सामने जो समस्याएँ है, वे छोटी नहीं है, और हमारे देश को जो मौका मिला है, वह भी छोटा नहीं है। हमारे देश ने एक दूसरे ढंग से आजादी हासिल की है, इसलिए सारी दुनिया को इस देश से एक विशेष आशा है। उसका खयाल रखकर अगर यहाँ के साहित्यिक चिंतन करेंगे, तो वे बहुत बड़ी सेवा कर सकेंगे। इस जमाने में भी हमारे देश ने अरविंद घोष जैसे ब्रह्मर्षि, रवि ठाकुर जैसे देवर्षि, और गांधीजी जैसे राजर्षि पैदा किये। ऐसे महान् आदर्श हमारे सामने उपस्थित हैं। उन

सबको ध्यान में रखकर जिस तरह देश की शोभा बढ़े, ऐसी साहित्य-सेवा हमारे साहित्यिक करेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ। बहुत बड़ी शक्ति हमारे पास है, क्षेत्र भी उतना ही बड़ा है। हमारे अंदर आत्मा है, बाहर यह सारा विश्वरूप है। देहरी द्वार की तरह वाणी दोनों के बीच खड़ी है, उस पुल की तरह, जो नदी के दोनों किनारों को जोड़ता है। इसलिए अगर हम वाणी ठीक प्रकट करते हैं, तो उस वाणी से सारी दुनिया को सजाते हैं, सारी दुनिया को प्रकाशित करते हैं, सारी दुनिया की सेवा करते हैं। इसलिए हमें ऐसी ही शक्ति संग्रह करनी चाहिए।

काशी-विद्यापीठ
१३-७-'५२

मैं अपने को साहित्यिक नहीं मानता। वैसे साहित्य के लिए मेरे मन में प्रेम है, और परमेश्वर ने मुझे हिन्दुस्तान की सब भाषाओं के और प्राचीन भाषाओं के साहित्य से परिचय प्राप्त करने का अवसर दिया है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैंने गहराई से अध्ययन किया है, परन्तु आत्म-संतोष के लिए मैंने अपना काम करते-करते कुछ अध्ययन किया है, क्योंकि मेरा जीवन कर्म-रत रहा है। वेदों से लेकर आज तक का जो विचार-प्रवाह है, उससे शब्द के खयाल से नहीं, विचारों के खयाल से मैं परिचित हूँ। उस विचारधारा में जो अच्छाइयाँ हैं, उनके प्रति मेरा प्रेम है। पश्चिम का साहित्य भी मैंने देखा है।

दो प्रकार का साहित्य

मैं साहित्यिक नहीं हूँ। आपके सामने यह व्याख्यान भी कार्यवश दे रहा हूँ। यह व्याख्यान केवल अहेतुक नहीं है, उसके पीछे हेतु है। संभव है कि साहित्य हेतु-युक्त हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। भगवद्गीता ने दो प्रकार के साहित्य का जिक्र किया है। एक तो वह कि स्फूर्ति हुई और उनके मुख से सूक्तों द्वारा वेद प्रकट हुआ और दूसरा वह साहित्य, जो हेतु-युक्त होता है।

साहित्यिक देवर्षि हैं

मेरा दावा साहित्यिक होने का नहीं है, परन्तु मैं जो बोलता हूँ और करता हूँ, उसमें सदिच्छा और सद्भाव रहता है। इसलिए उसकी अच्छे साहित्य में गिनती हो सकती है। साहित्यिकों से मेरा प्रेम रहा है और उनकी मुझ पर कृपा भी रही है। मैं उनकी कद्र करता हूँ। मैं मानता हूँ

कि सामाजिक जीवन में उनका स्थान ऊँचा है, इसलिए मैंने साहित्यिकों को 'देवर्षि' कहा है।

सहज प्रेरणा

साहित्य आत्महेतु के लिए होता है, परमेश्वर के लिए होता है और अहेतुक भी होता है। कुल मिलाकर साहित्यिकों से बोले बगैर, लिखे बगैर रहा नहीं जाता। उन्हें सहज प्रेरणा होती है, अन्तःस्फूर्ति होती है, जैसे, गंगा सहज बहती है, सूरज सहज प्रकाश देता है। सूरज को भान नहीं होता कि वह प्रकाश दे रहा है। उसी तरह देवर्षि स्वाभाविक रूप से बोलेंगे, रोयेंगे। हेतुपूर्वक बोलेंगे, तो भी गायेंगे। साहित्यिकों का स्थान बहुत ही ऊँचा है। 'भगवद्गीता' का मतलब है—भगवान् की गाई हुई चीज। इसलिए साहित्यिकों का जीवन में विशेष स्थान है।

अज्ञात देवर्षि

इस जमाने में भी ऐसे देवर्षि हुए हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर देवर्षि थे। जो बड़े होते हैं, प्रसिद्ध होते हैं, वे ही अच्छे और उत्तम साहित्यिक होते हैं, ऐसी बात नहीं है। वे तो अच्छे हैं ही, परन्तु उनसे भी बढ़कर वे हो सकते हैं, जिन्हें लोग जानते नहीं। सूरज की सात प्रकार की किरणें हम जानते हैं, परन्तु जो 'अल्ट्रावायोलेट' और 'इन्फ्रारेड'—जैसी किरणें होती हैं, उन्हें हम देख नहीं सकते, परन्तु उनका लाभ मिलता है। इस तरह जो सूर्य किरणें प्रकट होती हैं, उनसे भी वे किरणें अधिक उपकारक होती हैं, जो प्रकट नहीं होतीं। इसलिए दुनिया को जिनकी पहचान हुई है वे उतने महान् नहीं थे, जितने महान् वे थे, जिनकी दुनिया को पहचान नहीं हुई। भगवान् बुद्ध, ईसा आदि महान् व्यक्तियों की महिमा दुनिया गाती है। वे महान् थे, इसमें कोई शक नहीं। परन्तु उनके भी कोई गुरु थे,

जिनके नाम सिर्फ वे ही जानते हैं, दुनिया नहीं जानती। इसलिए हम उनकी योग्यता नहीं नाप सकते, क्योंकि हम उनको जानते नहीं। लेकिन वे हो गये। उनके संकल्प में ऐसी शक्ति थी कि उससे काम हो गये। कभी-कभी वे अव्यक्त रूप से हमें प्रेरणा देते हैं, और हमको वेग मिलता है। किनसे वेग मिलता है, हमें मालूम नहीं होता, क्योंकि वे अव्यक्त रूप से काम करते है। दुनिया में वे ही अधिक महान् और उच्च कोटि के है।

विन्या ने पत्थर फोड़ा

मुझे बचपन का एक किस्सा याद आता है। हमारे घर में पत्थर फोड़ने का काम चल रहा था। मै काम देखने जाता था। कभी-कभी मै कहता था कि मैं भी फोड़ना चाहता हूँ। वे लोग मुझे ऐसा पत्थर फोड़ने के लिए देते थे कि जो टूटने की तैयारी में होता था। मैं ज्योंही अपनी छोटी-सी हथौड़ी से उस पर आघात करता था, त्योंही वह टूट जाता था। तब सब लोग कहते थे, "विन्याने पत्थर फोड़ा।" उसी तरह दुनिया में वे लोग होते हैं, जिनका नाम दुनिया जानती है, लेकिन जिनको दुनिया जानती नहीं, वे सूक्ष्म अवस्था में रहते है। चिन्तन-मनन करना और उसके अनुसार जीवन बनाना, यही उनका काम होता है। उनकी महत्ता को हम पहचानते नहीं, परन्तु वे विचार को उतनी दूर तक लाते है कि जिसके आधार पर दुनिया में आगे कोई उस विचार को प्रसिद्ध करता है। शंकराचार्य का नाम दुनिया लेती है। दुनिया उनको बड़ा अद्वैतवादी मानती है, परन्तु अद्वैत में तो वे बच्चे थे। उनके पहले कितने महान् अद्वैतवादी हुए थे, जिनका नाम नहीं हुआ। नाम शंकराचार्य का हुआ, क्योंकि वे अपनी छोटी-सी हथौड़ी से पत्थर फोड़नेवाले 'विन्या' के जैसे थे।

बुनियाद के पत्थर

तुलसीदासजी ने रामायण में लक्ष्मण का वर्णन किया है—

"रघुपति कीरति विमल पताका,
दड समान भयउ जस जाका।"

रघुपति की जो विमल पताका दीख रही है, उसके आधारस्वरूप लक्ष्मण थे। हम कहते हैं, "झडा ऊँचा रहे हमारा।" कोई यह नहीं कहता, "डडा ऊँचा रहे हमारा।" परन्तु डडे के बिना झडा ऊँचा नहीं रह सकता। नाम तो झडे का ही होता है, डडे का नहीं। लक्ष्मण डडे के समान खड़ा था, कभी झुका नहीं। तुलसीदासजी ने उसके यश की महिमा पहचानी और प्रकट की। स्वय लक्ष्मण ही कबूल नहीं करेंगे कि वे रामजी से बढ़कर थे, लेकिन रामजी उन्हें वैसा मानते थे। रामजी लक्ष्मण से कहते हैं कि अगर तू न होता, तो मेरी क्या दशा होती! जिस समय लक्ष्मण को बाण लगा, उस समय रामजी यह कहकर रोये कि अब मेरा क्या होगा! सारी लीला उन्हीं की थी। लक्ष्मण भी उनकी लीला का ही भाग था। इसलिए यह तुलना यहाँ पर लागू नहीं होती, परन्तु ऐसी मिसालें देखने को मिलती हैं। बुनियाद को कोई नहीं देखता। सब ऊपर का मकान देखते हैं। परन्तु बुनियाद के पत्थरों की अपनी महिमा होती है। फिर भी कोई यह नहीं कहता कि इस मकान की बुनियाद कितनी अच्छी है। हाँ, कोई मकान पाँच सौ साल पुराना हो, तो शायद लोग उसकी बुनियाद की ओर ध्यान देंगे। लेकिन आज तो ऊपर की चीजें ही देखी जाती हैं। जिनके नाम हम जानते हैं, वे जुगनू हैं, वे जुगनू के जैसे होते हैं और जिनके नाम हम नहीं जानते हैं, वे ज्योति जैसे होते हैं। मैंने रवीन्द्रनाथ टागोर का नाम लिया था। परन्तु कई महान व्यक्ति ऐसे होंगे, जो अज्ञात रह गये।

भव्य कल्पना

'विष्णु-सहस्रनाम' में भगवान् के सब नाम एकत्र करके एक भव्य कल्पना की सृष्टि हुई है। वह एक बड़ा अद्भुत ग्रंथ है। उसमें भगवान् के लिए इस प्रकार के दो शब्द आये हैं—"शब्दातिगः शब्दसह।" अर्थात्—वह शब्द के उस पार होता है, परन्तु शब्द को सहन करता है। जिन्होंने सूक्ष्म विचार किया, उनका यह अनुभव है कि वाणी में न मालूम क्या-क्या प्रकट होता है! कभी-कभी विपरीत भी प्रकट होता है। वाणी में सम्यक् प्रकट होना कठिन है। इसलिए उत्तम-से-उत्तम साहित्यिकों की वाणी जो प्रकट हुई है, वह भगवान् ने सहन कर ली है। उससे कोई बात प्रकट नहीं हुई। फिर भी कुछ प्रकट हुआ।

अन्तःप्रेरणा

कालिदास ने अज-विलाप का जो वर्णन किया, उसे सुनकर हृदय गद्गद हो जाता है, लेकिन किसी माँ का लड़का मर जाता है, तो माँ ऐसी रोती है कि दूसरों को रुलाती है। आखिर कालिदास ने क्या किया? इतना ही किया न कि शब्दों द्वारा शोक प्रकट किया? लेकिन अगर उस माँ से लिखने के लिए कहा जाय, तो भी उससे लिखा नहीं जायगा। वह माँ यदि कवि है, उसके हाथ में हमने कलम रख दी और उससे कहा कि कुछ तो लिखो, अपना दुख नाहक न जाने दो, तो भी वह उस समय नहीं लिख पायेगी, बाद में चाहे लिख सके, जब वह उससे अलग हो जायगी। जिस भावना में हम होते हैं, उसको प्रकट करने का प्रयत्न किया जाता है। जिनसे लिखे बगैर नहीं रहा जाता, वे ही साहित्यिक हैं।

रामनाम का रस

हम आपको आज्ञा नहीं दे सकते कि आप भूदान के गीत गायें। आपको जो सूझेगा, वही आप गायेंगे। हम आपसे सिर्फ इतना ही कहेंगे

कि आपके सामने जो कुछ हो रहा है, वह एक क्रान्ति का काम है। हम तो उसमें भगवान् का एक खेल देख रहे हैं। उसमें ऐसे दृश्य दीखते हैं, जिससे हमको तो स्फूर्ति होती है। इस विषय पर आज तक हमारे कई व्याख्यान हुए, परन्तु हमारा इसमें रस कम नहीं होता, जैसे रामनाम लेने में कभी कम नहीं होता है, वैसा ही रमणीय और कमनीय यह विषय हमें मिला है। भगवान् ने हमें जो वाक्शक्ति दी है, उसको इसमें पूरा अवकाश मिलता है। भगवान् ने किसी एक के हृदय को ही यह धर्म दिया है, ऐसी बात नहीं है। दुनिया में कुछ समानधर्मा होते हैं और कुछ विशेषताएँ भी होती हैं। समानधर्मियों में, आपमें किसीको अगर सहज स्फूर्ति हुई, तो आप इस विषय को छेड़िये।

स्फूर्ति का प्रश्न

बापू ने रवीन्द्र से प्रार्थना की थी कि वे जलियाँवाला बाग के हत्याकांड पर कुछ लिखें। उन्होंने कहा, "मुझे अभी स्फूर्ति नहीं हुई है।" ऐसा हो सकता है। उत्तम-से-उत्तम स्फूर्ति का विषय होने पर भी किसीका स्वभाव ऐसा हो सकता है कि उसे वह छूता नहीं। इसलिए हम यह नहीं कहेंगे कि आप साहित्यिकों का यह धर्म है कि आप भूदान पर लिखिये, परन्तु सहज स्फूर्ति हो जाय, तो यह एक लिखने लायक विषय है, इतना ही हम कहना चाहते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि आपको तो ऊबड़-खाबड़ जमीन ही मिलती है। तो मैं जवाब देता हूँ कि भगवान् ने रुक्मिणी को स्वीकार किया, इसमें भगवान् की कोई विशेषता नहीं। उन्होंने कुब्जा को स्वीकार किया, इसमें उनकी विशेषता है। इसलिए मुझे ऊबड़-खाबड़ जमीन मिलती है, तो मैं उसे उर्वरा बनाऊँगा। मैंने आश्रम में खेती का प्रयोग करते समय अपने साथियों से कहा था कि कुछ तो खराब जमीन लेकर प्रयोग करो,

तभी देश की सेवा होगी। भूदान-यज्ञ मे हम देख रहे है कि लोग किस तरह अपने जिगर के टुकडे देते है। कइयों ने शबरी के बेर अर्पण किये है। मेरे लिए यह सारा विषय स्फूर्ति का है।

समानधर्मियों से प्रार्थना

आपमें से जो समानधर्मी होगे, उनसे मै कहूँगा कि आप इसका निरीक्षण कीजिये और शब्द मे लाने का प्रयत्न करने की प्रेरणा हुई, तो कीजिये। अगर इसमे कोई मल दीख पडे, तो इसे निर्मल बनाइये। विरोधी कल्पनाएँ भी प्रकट कीजिये। भट्टी में डालने पर स्वर्ण अपना गुण दिखाता है, इसलिए आपके मन में जो कुछ आये, उसे प्रकट कीजिये।

हमारे साथ घूमिये

साहित्यिकों के साथ बातचीत करने का समय मिलता है, तो मुझे बहुत खुशी होती है। साहित्यिकों में जितनी विविधता होती है, उतनी और कहा नहीं होती। जैसे, सृष्टि मे हर प्राणी अपने-अपने ढग का होता है, वैसे ही साहित्यिकों की सृष्टि भी विचित्र होती है। हमारे देवता भी उसी तरह विचित्र होते है। कोई तुलसी-दल से प्रसन्न होता है, तो कोई बिल्व पत्र से, कोई नदी पर बैठता है, कोई मोर पर, तो गणपति चूहे पर। आप साहित्यिकों का देव तो गणपति है। इसलिए आप भी किस चूहे पर बैठेंगे और आपका मन कहाँ लगेगा, कोई नहा जानता। हो सकता है कि आपको नदी, गरुड, मोर आदि का आकर्षण न हो और चूहे का ही आकर्षण हो। फिर भी हम आपसे प्रार्थना करते है कि आप कुछ दिन हमारे साथ घूमने के लिए आइये। आपकी सगति से हम भी आनद होगा।

पटना (बिहार)
२३-१०-'५२

साहित्यिक का मूल गुण : सचाई

मुझे अच्छा लगा कि इस आन्दोलन में जो छिपी हुई स्फूर्ति है, वह साहित्यिकों को स्वाभाविक ही मिली और हृदयगम हुई। सियारामशरणजी ने मैथिलीशरणजी की कविताओं का एक सग्रह मेरे पास भेजा है। उन्होंने भूदान पर कुछ कविताएँ लिखी है। सग्रह मुझे अच्छा लगा। मेरी ऐसी कोई योजना नहीं थी कि साहित्यिकों को इकट्ठा करके कुछ कहूँ। जो पुण्य-कार्य हम कर रहे है, उसकी सुगध तो फैलती ही है। सुगध फैलने पर भ्रमर तो आते ही है। उन्हें बुलाना नहीं पडता। रसिक भ्रमर सहज आते है। इसलिए इस विषय में मै साहित्यिकों को बुलाना नहीं चाहता।

साहित्यिक सच्चा हो

साहित्यिकों में कई गुण होते है, जिनमे वे परिपूर्ण होते है। और कुछ गुण हो या न हो, मूलभूत गुण तो उनमें होना ही चाहिए, जिसके बिना वे साहित्यिक नहीं हो सकते। वह है—सचाई। साहित्यिक सच्चा होना चाहिए। वह सच्चा सत्पुरुष हो या सच्चा दुर्जन। सच्चा सत्पुरुष हो, तो सोने मे सुगध आ जायगी। अगर दुर्जन हो, तो सच्चा दुर्जन हो, भीतर और बाहर से दुर्जन हो, तब जीवन शाला में शिक्षण पा सकता है। जीवन ऐसी शाला है, जिस पर चलते ही जाओ, चाहे सीधे रास्ते पर चलो या काँटे के रास्ते पर। अनुभव से ज्ञान प्राप्त होता है, यही खूबी है। सन्मार्ग पर चलो या कुमार्ग पर, साहित्य का निर्माण होता ही है। आप जानते हैं, दुनिया का सबसे श्रेष्ठ और सुन्दर साहित्य एक बदमाश ने लिखा है, जिसका नाम है वाल्मीकि। वाल्मीकि ऋषि-महाराज है, इसमें शका नहीं। आप जानते है, वे एक समय डाकू थे। मनुष्य की हत्या पर जीता

चलाते थे, लेकिन उनका जीवन सीधा और सच्चा था, अन्दर से और बाहर से उसमें कोई फर्क नहीं था।

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहर हुँ, जो चाहसि उजियार॥

—"अन्दर और बाहर प्रकाश चाहता है, तो जो जीभ है, वहाँ राम नाम का दीप खड़ा कर दे।"

वाणी एक ऐसा साधन है, जो बाहर और भीतर को जोड़ सकती है, लेकिन जिनके अन्दर एक और बाहर दूसरा होता है, उनकी वाणी निस्तेज बनती है। उसका समाज पर असर नहीं होता। समाज के सामने जो सीधी बातें बोलता है, उसका असर होता है।

अनुभव और वाणी

कालिदास ने 'विलाप' लिखा है। जिसका पति मर गया, बच्चा मर गया, वह स्त्री विलाप करती है। उसे कोई सिखाता नहीं, वह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है। जहाँ अनुभव आता है, वहाँ वाणी प्रकट होती है। यह बनावटी बात नहीं, अनुभव की बात है। वह बच्चे के मरने का अनुभव करती और अपना शोक प्रकट करती है। किसी माँ के बारे में ऐसा नहीं सुना कि उसने विलाप इसलिए नहीं किया कि उसने किसी कॉलेज में तालीम नहीं पायी थी और बच्चा बिना विलाप के चला गया।

आप सब बालक ध्रुव को जानते हैं। ध्रुव तो एक छोटा बालक था। जंगल में तपस्या करने गया था। उसके सामने साक्षात् परमेश्वर खड़े हो गये। यह देखकर वाणी निकली नहीं, उसे कुछ सूझा नहीं, आखिर बच्चा ही तो था। कहते हैं कि भगवान् ने अपने शंख का स्पर्श उसके गाल से किया। स्पर्श होते ही वाणी प्रकट हुई—

"योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्ताम्"—ऐसा दिव्य श्लोक वह बोल गया। वह दिव्य-वाणी थी। उसने जो दृश्य देखा, उसका परिणाम हुआ और उसके प्रभाव से ऐसी वाणी निकली। भगवान् को देखकर वह प्रसन्न हो गया। जहाँ प्रत्यक्ष अनुभव होता है, वहाँ वाणी प्रकट होती है। कोई मुत्सद्दी लोग अन्दर एक और बाहर दूसरा दिखाते हैं। वे दुनिया को चाहें तो ठग लें, पर अपने आपको नहीं ठग सकते, इसीलिए वे अपने को प्रकट भी नहीं कर सकते।

परमेश्वर के सामने सब खोल दीजिये

अन्तर और बाह्य में भेद रखनेवाले व्यक्ति काव्य नहीं लिख सकते, वैसे किताब के पन्ने-पर-पन्ने भले ही भरते जायँ। 'इंडियन पिनल कोड' लिखनेवाले को कभी कोई काव्य सूझता भी है? कविता का रस वहाँ प्रकट होता है, जहा वह अन्दर-बाहर एक-रस हो जाता है। वहाँ तो पवित्र गंगा बहती है। इसलिए मैंने कहा कि अगर कोई मनुष्य बुरा है, तो उसे सचमुच बुरा होना चाहिए। पर बुरे भी सच्चे बुरे नहीं होते हैं, ढोंग करते है। गीता ने कहा है, "मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।" यह रजोगुण है। मेहनत करके वह अपनी जगह पर बैठ जाता है, क्योंकि उसका सारा जीवन दम्भ से भरा रहता है। लिबास करेंगे, तो दम्भ से करेंगे, बोलेंगे, तो दम्भ से बोलेंगे, स्वागत में भी ढोंग करेंगे। कई जगह हमें मान-पत्र दिये जाते है। हमें मालूम नहीं होता कि ये मान-पत्र हैं या अपमान-पत्र। हृदय का भाव उनमें नहीं रहता। अत्युत्तम शब्द लेकर लिखते हैं।

एक ग्रामीण आता और कहता है, "बाबाजी, आपके दर्शन से हमें बहुत खुशी हुई!" कितना अच्छा लगता है यह सुनकर, कितने सीधे

होते है लोग ! मान-पत्र देनेवाले तो लम्बा-चौडा मान-पत्र देते हैं। संस्कृत के शब्द ढूँढ-ढूँढकर उसमे लिखते है। आजकल सभी जगह यह दाम्भिकता आ गयी है। कोई आता है मेरे पास बात करने के लिए, बहुत बातें करता रहता है। मै चाहता हूँ कि वह उठ जाय। जब उठता और कहता है कि "बाबाजी, मैने आपका काफी समय ले लिया", तब मे कहता हूँ, "नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नही।" क्या यह सचाई है ? ऐसा कहना चाहिए, "हाँ भाई, तुमने मेरा बहुत समय लिया, पर अब दुबारा ऐसी गलती मत करना।" असत् वर्तन से भी ज्यादा बुराई उसे ढँकने मे है। अगर आप रोग को ढँकेंगे, तो डॉक्टर क्या मदद करेगा ? डॉक्टर के पास तो दिल खोल देना चाहिए। वैसे ही ईश्वर के सामने दिल खोलकर रखना चाहिए। सूरदास का यह वचन आपने सुना होगा

"मो सम कौन कुटिल खल कामी।"

यह क्या काव्य लिखा ? उसने देखा, मेरे मन मे बहुत दुर्गुण भरे है। लोग तो मुझे 'साधु'-'साधु' कहते है, पर जैसे-जैसे लोग मुझे 'साधु' कहते है, वैसे-वैसे मेरे मन मे दम्भ भरता जाता है। इसलिए उसने आखिर भगवान् के सामने अपना दिल प्रकट कर दिया। घर को आग लगे और लोग उसे ठडा-ठडा बतायें, तो कैसे काम होगा ? मन मे विकार है, पाप है, मलिनता है और फिर भी लोग कहते हैं 'अच्छे' है। ये सारे पाप, विकार, मलिनता प्रकट हो जायँ, तो मनुष्य एक बार सज्जन बन सकता है।

अति-सज्जन और अति दुर्जन का सम्मेलन होता है। उनका स्नेह-सम्मेलन होता है। कुछ लोग मन के भाव प्रकट नही करते। जहाँ ऐसा होता है, वहाँ वाणी की चोरी होती है। मनु ने कहा है, "दस चोरी करनेवाले उतने दोषी नहीं, जितने दोषी वाणी की चोरी करनेवाले होते है।"

वाणी की चोरी

सारे अर्थ वाणी में से निकलते है। जिसने वाणी की चोरी की, उसने दुनियाभर की सारी चोरियाँ कर डाला। सब कुछ प्रकट तो करो। जैसे डाक्टर के पास सब खोलकर बताना होता है, वैसे ही परमेश्वर के सामने भी खोलकर रखना पडता है। परमेश्वर और कोन है? यह सारी जनता ही तो परमेश्वर है। उसके सामने सब कुछ खोलकर रखने की हिम्मत चाहिए। पाप पुण्य जो कुछ हो, वह सब खोलकर रखना होगा।

साहित्यिक का मूल गुण

साहित्यिक का मूलभूत गुण होता है—सचाई। जो बात मेरे दिल को जँचे और आपके दिल को न जँचे, उस पर मै आपसे कविता नहीं लिखवा सकता। मेरे कहने से कोई कवि नहीं बनता। कवि तो स्वतन्त्र होता है। आप जानते है, महाभारत का बडा भारी युद्ध हुआ था। मसला जमीन का था। दोनों तरफ से दावे रखे गये और वैरभाव सबके दिल मे आ गया। धर्मराज ने कहा, "हमें युद्ध नहा चाहिए, अपना दावा हम छोडते हैं। हमारा पहला दावा था, पूरा राज्य दें, दूसरा दावा था, आधा राज्य दें, वह भी छोडते है। अब सिर्फ हमारी पॉच गॉव की माग है, पॉच गाव दीजिये।" श्रीकृष्ण ने दूसरे पक्ष क पास जाकर यह बात कही, "आपके पास पॉच लाख गॉव हैं, उनमे से सिर्फ पॉच गॉव उन्हे दे दीजिये।" दुर्योधन ने कहा, "नहीं भाई, सूच्यग्र याने सूई की नोक पर जितनी मिट्टी रहेगी, उतनी भी हक के नाम पर नहीं देंगे। दावा न रखकर नाम मागें, तो मै दे सकता हूँ। दान तो साधु-महन्तो को भी देता हूँ। इसी पर से झगड़ा हो गया।

दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि

आज मैं लोगों के सामने अपना दावा रखता हूँ, दान माँगता हूँ, गरीबों का हक माँगता हूँ। सब जमीन ईश्वर की है, ऐसा समझाता हूँ। अपने को मैं दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि मानता हूँ। लोग मुझे जमीन दे रहे हैं, अच्छे भाव से दे रहे हैं, लेकिन मैं इतने से ही तृप्त नहीं होनेवाला हूँ। मैं कहता हूँ, अच्छी जमीन दीजिये, परती भी दीजिये, अच्छी जमीन का छठा हिस्सा दीजिये। गरीबों से कहता हूँ—"जितनी देनी हो, उतनी दीजिये।" बड़ों से मैं कहता हूँ, "अपने पास थोड़ी रखकर बाकी सब दे दीजिये। केवल लकड़ी से यज्ञ नहीं होता। यज्ञ के लिए घी भी चाहिए।" तो जो अच्छी जमीन है, वह घी है और जो परती जमीन है, वह लकड़ी है। मुझे दोनों चाहिए। मैं ब्राह्मण हूँ, भिक्षा का मुझे हक है। लेकिन मैं ब्राह्मण के नाते नहीं, बल्कि दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि के नाते माँग रहा हूँ और लोग दे रहे हैं।

यह माना गया है कि यह कलियुग है, लेकिन मैं इसमें सतयुग भी देख रहा हूँ। मैंने सोचा कि लोग इसे 'कलियुग' क्यों कहते हैं। फिर मेरे ध्यान में आया कि कलियुग में सतयुग आ सकता है, कलियुग तो नाममात्र है। इतिहास देखने पर मुझे पता चला कि जो अच्छे-अच्छे युग माने गये हैं, उनमें भी बुरे लोग हुए हैं। इस कलियुग में भी महान्-से-महान् सत्पुरुष हो गये। अब तो सतयुग आ रहा है। अगर आपको यह दर्शन हुआ, तो स्फूर्ति हो सकती है।

भगवान् का साक्षात्कार !

यहाँ अन्धों ने भी दान दिया है। वह रामचरण अन्धा ! जिस पड़ाव पर मुझे कम जमीन मिली थी, वहाँ उसने रात में बैलगाड़ी से आकर हमें

दान दिया। सोये हुए लोगों को उसने जगाया। दान दिया और चला गया। मैं तो सोया था। दूसरे दिन मुझे लोग बता रहे थे, एक अन्धा आया था, जो दान देकर चला गया। मैंने कहा, "वह अन्धा नहीं था, वह तो भगवान् था। उसे अन्धा कहनेवाला खुद ही अन्धा है।" ऐसे कितने ही किस्से हुए हैं। मेरे लिए तो वह भगवान् का साक्षात्कार है। मेरे लिए तो इसमें काव्य ही-काव्य भरा हुआ है। उससे मुझे सहज ही स्फूर्ति होती है।

इस आन्दोलन में हमें कुछ लोग रद्दी जमीन देते हैं। जो यही देखेंगे, उनको काव्य कैसे सूझेगा? कुछ लोग लज्जा से भी देते हैं। कुछ अच्छी जमीन भी देते हैं। जो लज्जा से देता है, वह भी अच्छा ही है। इतना ही दर्शन जिन्हें होता है, उन्हें स्फूर्ति नहीं होगी। नदी में बाढ़ आती है, तो गदा पानी भी आता है और स्वच्छ, निर्मल पानी भी आता है। वैसे ही यज्ञ है। पर इसमें स्वच्छ, निर्मल पानी आ रहा है, यह देख कर आपको स्फूर्ति होगी, तो आप बहुत काम कर सकेंगे।

अनुभूति से काव्य-स्फुरण

"जहाँ न पहुँचे रवि, तहाँ पहुँचे कवि।"

कवि क्रान्त-दर्शी होते हैं—इस पार का नहीं, उस पार का देखनेवाले। ग्रहण के दिन किसीने कहा—"ग्रहण होता है, तो क्या होता है, हम नहीं जानते। सूर्य पृथ्वी के बीच चन्द्र आता है, तो क्या हुआ, उसमें कौन-सी बड़ी बात है?" मैंने कहा—"तू अगर इस नदी में डूबेगा, तो क्या होगा? कौन शोक करेगा? तेरे पेट के और आसमान के बीच पानी आता है, तो क्यों चिल्लाता है?" दुनिया में ग्रहण जैसी घटना घटती है, तो चिन्तन के लिए मौका मिलता है। सूर्य का प्रकाश मंद होता है, तो सोचने की बात होती है। जहाँ खग्रास ग्रहण होता है, वहाँ दुनिया के शास्त्रज्ञ दौड़-दौड़कर आते हैं। वे समझते हैं कि बड़ी भारी घटना घट रही

है, क्योंकि वे लोग ज्ञानी होते है। जो ज्ञानी नहा होते, उन्हें कुछ नहा दीखता। सूर्य डूब रहा है और हम मौज-विलास मे है, फुटबाल खेल रहे है। वह तो ध्यान का समय होता है।

मै जेल मे था, बादशाह जैसा आनन्द था वहा। जेलर पूछने लगा—"आपको तो यहाँ कोई दु ख दीखता नहीं?" मैंने कहा—"जेल मे रहता हूँ, तो मेरे लिए नया जेल थोडे ही है! यही एक जेल है क्या? शरीर का भी तो जेल है, उसमे भी आनन्द है। लेकिन यहाँ पर एक दुख है।" उसने पूछा—"कौनसा दुख है?" मैने कहा—"नहीं, अभी नहा बताऊँगा। सात दिन की मुद्दत देता हूँ। आप सोचकर आइये।" वह सात दिन के बाद आया और कहने लगा—"मै तो नहीं बता सकता।" मैंने कहा—"यहाँ चारो ओर दीवारें खडी है, जिससे मुझे सूर्योदय और सूर्यास्त नहीं दिखाई पडता। यही मुझे दुख है।"

कितना रमणीय दृश्य होता है सूर्योदय और सूर्यास्त का! बिना इसको देखे दुनिया के एक रत्न को खोने का दु ख होता है। जो इस घटना को देखते है, उन्हे काव्य की स्फूर्ति होती है। जो नहीं देखते, उन्हे कोई काव्य नहीं स्फुरता।

शहर पर बम गिरा और सारा शहर तबाह हो गया। सूचना आयी और मिलिटरी के लोग दौड पडे। उन्होने कहा—"बहुत नुकसान तो नहा हुआ, केवल १० प्रतिशत ही नुकसान हुआ।" जहाँ गणित का मामला आता है, वहाँ ऐसा ही होता है। जैसे आप किसीके घरवाले मे कहें—"दस मे से केवल एक मरा, नौ तो जीवित ही है, तो तुम दस प्रतिशत ही शोक क्यो नहा करते?" जो घटना घटी वह मामूली है, ऐसा जिसको लगेगा, उसे काव्य की स्फूर्ति क्या मिलेगी? जहाँ करुणा, आनन्द हो और उस करुणा और आनन्द का भान न हो, तो काव्य नहा स्फुरेगा।

दुःख की, आनन्द की अनुभूति आपको होगी, तो उसके मुताबिक आप सहयोग देंगे। जिसने सचाई से वाणी का उपयोग किया, उसने लाखों एकड़ से भी अधिक दान दिया।

गया (विहार)
३-८-'५३

बहुत खुशी होती अगर आज मैं बँगला में बोल सकता। वैसे मैं बँगला पढ़ तो लेता हूँ और साहित्यिक भाषा में कोई बोलते हैं, तो समझ भी लेता हूँ, लेकिन बोलने में समर्थ नहीं हूँ। हाँ, अगर दो-चार महीने बंगाल में रहने का मौका आये, तो आखिरी व्याख्यान बँगला में दे सकता हूँ। लेकिन आज वह स्थिति नहीं है। मैंने कोशिश की है कि हिन्दुस्तान की सब भाषाओं से मेरा प्रेम-परिचय हो। ज्ञान-परिचय के लिए काफी समय चाहिए। उतना अवकाश मुझ-जैसे व्यक्ति को कहाँ से मिलता? लेकिन मैंने प्रेम-परिचय किया है। दक्षिण और उत्तर की करीब-करीब सभी भाषाएँ मैं समझ लेता हूँ।

परमेश्वर का काम

भूदान-यज्ञ के सिलसिले में घूमते हुए जगह-जगह हमें साहित्यिकों से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। सबने भूदान-यज्ञ के लिए बहुत हार्दिक सहानुभूति प्रकट की और उनके मन में उत्साह पैदा हुआ। मैंने कोई खास बात तो नहीं की; परन्तु ईश्वर जब किसी काम को चालना देता है, तो सहस्रमुख से देता है। चारों ओर वह फैल जाता है और तब वह काम मनुष्य का नहीं रह जाता।

कालिदास के बाद रवीन्द्रनाथ

बंगाल तो साहित्यिकों का देश माना जाता है। यह पूर्व दिशा है। पूर्व दिशा में सूर्योदय पहले होता है, ऐसा कहा जाता है। यों तो आजकल किसे पूर्व कहा जाय और किसे पश्चिम, पता नहीं चलता। अब तो सुदूरपूर्व की भी बात की जाती है। वैसे तो पृथ्वी के गोल होने से जो पूर्व है, वह पश्चिम

भी है और जो पश्चिम है, वह पूर्व भी है। फिर भी आधुनिक हिन्दुस्तान के इतिहास में भारतीय अर्वाचीन साहित्य का उदय बंगाल में हुआ। यों तो आप साहित्यिकों के पचासों नाम लेंगे, लेकिन इतने सब नाम हिन्दुस्तान को मालूम नहीं हैं। फिर भी कम-से-कम बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र को न जाननेवाले पढ़े-लिखे लोग हिन्दुस्तान में कहीं भी नहीं होंगे। बंगाल के दूसरे भी महान् नाम हैं, जो हिन्दुस्तान में मशहूर हैं; पर उनका उल्लेख मैं यहाँ नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि वे दूसरे क्षेत्र के ज्ञानी थे। साहित्य के क्षेत्र में ये तीन नाम हिन्दुस्तानभर में अजर-अमर हो गये हैं। इनमें भी हम कह सकते हैं कि कालिदास के बाद भारतीय संस्कृति को समग्र रूप में देखनेवाला और सम्यक् रूप में व्यक्त करनेवाला रवीन्द्रनाथ से बढ़कर शायद दूसरा कोई नहीं हुआ। वैसे महाकवि तुलसीदास, महाराष्ट्र के ज्ञानदेव, दक्षिण भारत के कम्बन और दूसरे भी कई महाकवि हो गये हैं, लेकिन उनकी योग्यता भिन्न कोटि की थी। वे धर्मपुरुष थे। एक साहित्यिक के नाते, जिन्होंने भारतीय संस्कृति को पूरी तरह देखा, केवल धर्म की दृष्टि से नहीं, बल्कि समग्र जीवन को, जीवन के सब पहलुओं को देखा, वे रविबाबू ही हैं।

दीपकों की यह पंक्ति

यहाँ पर जो इतने सारे दीपक सँजोये गये हैं,* उनकी क्या जरूरत है? जीवन के अनेक पहलू होते हैं, वैसे ही ये अनेक दीपक दीख रहे हैं। जीवन के अनेक पहलुओं का जिन्हें सम्यक् दर्शन हुआ है, ऐसे महापुरुष कालिदास के बाद रवीन्द्रनाथ ही हुए हैं। अतः कहा जा सकता है कि अर्वाचीन काल में यहाँ पर पूर्व दिशा में प्रथम उदय हुआ। प्राचीन-

* मंच पर जगमगाती दीप-पंक्ति की ओर संकेत है।

काल की बात दूसरी थी। तब दूसरी जगहो पर प्रकाश का उदय हुआ था। भगवान् बुद्ध के जमाने मे बिहार सामने आया था और उपनिषदो के युग मे शायद पजाब और उत्तर-प्रदेश आगे आये थे। किन्तु कालिदास के बाद जब हम आज की हालत देखते है, तो अर्वाचीन भारतीय साहित्य मे, इधर सो-दो सौ वर्ष मे, बगाल ही आगे आया। अर्वाचीन साहित्य की जन्मभूमि बगाल है, ऐसा माना जाता है। ऐसे स्थान के साहित्यिको से मिलने का प्रसग आया है, इसलिए बहुत आनन्द हो रहा है।

भूदान-यज्ञ की पूर्वपीठिका

साहित्यिक होने का मेरा दावा नहीं है, न मुझ पर ऐसा कोई आरोप किया जाता है कि मै साहित्यिक हूँ। यह सही है कि मैने मराठी मे कुछ लिखा है और वह लोगों को प्रिय लगा है। वह घर-घर पढा भी जाता है। लेकिन पढनेवाले उसे साहित्य के तौर पर नहीं देखते, एक जीवन विचार के तौर पर, धर्म-विचार के तौर पर, देखते है।

लोग मुझे गणितज्ञ के तौर पर जानते है। यह बात सही है। यहाँ आते ही जब मैने दीपक देखे, तो सारे दीपक गिन ही डाले।

रामकृष्ण परमहस का एक दृष्टान्त है। एक बार एक भाई आये और आम का पेड देखकर आम गिनने लगे। फिर दूसरे भाई आये और उन्होने आम देखते ही दो चार आम मँगवाकर खा लिये। उधर पहलेवाले भाई आम गिनते ही रहे।

बचपन मे मै रामकृष्ण परमहस का साहित्य बहुत पढता था। उससे मै अच्छी तरह परिचित हूँ। अग्रेजी मे, मराठी मे और बँगला मे भी मैने उनका साहित्य पढा है। उनकी यह मिसाल यहाँ पर लागू होती है। मैने देखते ही दीपक गिन लिये। ग्यारह दीपक थे। मुझे याद आया कि हमारी इन्द्रियाँ ग्यारह है और एकादश इन्द्रियो की ज्योति से सारा विश्व

प्रकाशित हुआ है। इस तरह मैं देखता गया और भाव विभोर होता गया। मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि मेरे जीवन में गणित है और लोग इस बात को जानते हैं।

काव्य-रचना का शौक

मुझे बचपन में कविता रचने का भी शौक था। एक एक कविता में दो-दो, तीन-तीन दिन लगते थे। कविता गुनगुनाकर देखने से मुझे मालूम हो जाता था कि कविता अब सर्वाङ्ग-सुन्दर हुई है। मैं उस समय बच्चा ही था, तो जो लिखता वह मुझे सर्वाङ्ग-सुन्दर ही लगता था। जब मुझे पूरा समाधान हो जाता था कि कविता सुन्दर बनी है, तब उसे पूरी करता था। बचपन में मैं बहुत कमजोर था और अक्सर जाड़े के दिनों में चूल्हे के सामने बैठकर मुझे कविता लिखने की स्फूर्ति होती थी। इस तरह जब मुझे विश्वास हो जाता था कि कविता बहुत अच्छी बनी है तब मैं वह कविता अग्निनारायण को समर्पित कर देता था। इसी तरह मैंने उस समय की सब कविताएँ अग्निनारायण को समर्पित कर दी। फिर भी मेरे मित्रों ने दो-चार कविताएँ छीन ली। वे आज भी बची हुई हैं। बाकी सारी कविताएँ अर्पण हो गयी हैं।

मैं अग्निनारायण को कविता तब अर्पण करता था, जब मुझे विश्वास हो जाता था कि यह कविता सर्वाङ्ग-सुन्दर बनी है। वह यज्ञ की भावना थी। वही भावना भूदान-यज्ञ में भी है। तो मैंने उसकी पूर्वपीठिका (जेनेसीस) आपको बतायी कि यह भावना मुझमें पहले से थी।

शायद आप साहित्यिकों को ऐसा लगे कि इस तरह कविताओं की आहुति देना अनुचित है। भगवान् ईसा ने कहा है कि दीपक जलाओगे, तो क्या उसे किसी पात्र के अन्दर ढाँककर रखोगे? उसे तो प्रकट करना चाहिए। उसी तरह साहित्य जब सर्वाङ्ग-सुन्दर मालूम हो, तो उसे दुनिया

के सामने प्रकट करना चाहिए। कुछ लोगों की दृष्टि ऐसी होती है, परन्तु मेरी दृष्टि भगवान् की चीज भगवान् को अर्पण कर देने की थी। उस आहुति से दुनिया का कोई नुकसान हुआ, ऐसा मुझे कभी नहीं लगा, बल्कि उसके कारण मेरे अन्दर एक-एक विचार घनीभूत होता गया।

आत्मनिष्ठा की वृद्धि

भाप की शक्ति को लोग पहले नहीं जानते थे, क्योंकि भाप प्रकट होती थी और हवा में चली जाती थी। इसलिए उसकी शक्ति मालूम नहीं होती थी। परन्तु इन दिनों एक जादू हाथ आया है। भाप को बन्द करके रखना और फिर उसकी शक्ति को प्रकट करना—यह अब मालूम हो गया है। उसी तरह जो साहित्य की भाप है, उसे पैदा करके अन्दर-ही-अन्दर आत्मा में हम जीर्ण करते है, तो कुछ खोते नहीं, बल्कि उससे आत्मनिष्ठा बढ़ती ही है।

विचार का प्रकाशन वाणी से हो सकता है, लेकिन वाणी से भी जो गहरी चीज है, जीवन और आचरण, उसके जरिये विचार का प्रकाशन होता है। वाणी भी अच्छी है, परन्तु उससे सूक्ष्म साधन है, जीवन। उसके जरिये वह प्रकट होता है। उसके बाद जब मै ब्रह्म की खोज में घर छोड़-कर निकल पड़ा, तो काशी में आया। वहाँ गंगा के निकट मेरा कविता लिखने का शौक और बढ़ा। उस समय मै गंगा-तट पर बैठता था। वहाँ के शान्त वातावरण में ध्यान, चिन्तन करके कविता लिखता था और जो अच्छी बन जाती थी, उसे गंगा को अर्पित कर देता था। इस तरह अग्नि-' नारायण गया और गगा आयी।

माता की प्रेरणा

एक किस्सा मुझे याद आता है। बचपन में मेरी माँ गीता पर प्रवचन सुनने जाती थी। मेरी माँ ने मुझसे कहा कि गीता तो संस्कृत मे है, मै

नहीं समझ सकती। इसलिए मुझे मराठी में गीता चाहिए। तब मैंने उसे गीता का एक गद्य-अनुवाद ला दिया। उसने वह पढ़ा और कहने लगी कि यह तो गद्य है, पद्य होता तो अच्छा होता। उस समय जो एक पद्य-अनुवाद था, वह मैंने उसे दिया। उस पद्य से मुझे सन्तोष तो नहीं था, परन्तु दूसरा पद्य-अनुवाद था ही नहीं। वह कठिन था, फिर भी मुझे वही देना पड़ा। उन दिनों मैं कॉलेज में पढ़ता था। माँ ने मुझसे कहा कि यह पद्य तो संस्कृत जैसा ही कठिन है। मैंने कहा कि इससे आसान कोई दूसरा है ही नहीं। जब मैंने यह बताया तो वह सहज ही बोल गयी, "फिर तू खुद ही क्यों नहीं अनुवाद करता ?" मुझे मालूम नहीं कि उसे मुझ पर इतना विश्वास कैसे हो गया था कि यह लड़का गीता का अनुवाद कर सकता है। शायद उसने मेरा कविता लिखना और आहुति देना—यह सारा अग्नि-कार्य देखा होगा। इसलिए उसे ऐसा विश्वास हुआ हो। लेकिन यह कहना होगा कि मुझे अगर सबसे अधिक बल किसीने दिया है तो (यह कहकर विनोबाजी २-३ मिनट तक रुक गये। आँखों से अश्रु-धारा प्रवाहित हो रही थी।) मेरी माँ ने दिया है। उसने मेरे लिए कुछ नहीं किया। वह मुझे कुछ सिखा भी नहीं सकती थी। वह विद्वान् नहीं थी। पढ़ी-लिखी नहीं थी। उसे पढ़ना तो मैंने ही सिखाया था, परन्तु उसने मुझ पर अत्यधिक विश्वास रखा। केवल उसके विश्वास से ही मुझमें बल आ गया। यह कीमिया है, जादू है। यही जादू मैंने वेद और उपनिषदों में पाया।

श्रुति को 'माता' कहते हैं। शंकराचार्य ने श्रुति का—वेदों का वर्णन किया है कि 'मातृ-पितृ-सहस्रेभ्योऽपि वत्सलतरा'। श्रुति या वेद इतने करुणामय हैं कि सहस्र माता पिता से भी अधिक करुणामय हैं। श्रुति हम पर विश्वास रखती है और विश्वास से ही मनुष्य को बलवान् बनाती है। हम वेद के सामने जाते और कहते हैं कि "हम दीन हैं, पापी हैं, वासनाओं से भरे हुए

है।" श्रुति हमारी बात सुन तो लेती है, परन्तु हमसे कहती है कि "तू ब्रह्म है!" मानवता पर कितना अधिक विश्वास है यह! हम खुद उसके पास जाकर कहते है कि "हम नादान हैं, पापी हैं, तू ही हमको बचा" तो वह हमें पहले ही वाक्य सुनाती है कि "तू पापी नहीं है, तू ब्रह्म है।"

अन्य पचासों धर्मग्रन्थ हैं, जो कहते है कि "तू पापी है और अब पुण्यवान् बन।" परन्तु श्रुति ऐसा नहीं कहती। वह विश्वास रखती है कि तू ब्रह्म है। वैसे ही मेरी माता ने मुझ पर विश्वास रखा। मैंने उस समय उसकी बात सुन ली, लेकिन वह चीज मेरे मन में पड़ी हुई थी। फिर कई साल बाद, जब मेरी माता मर चुकी थी, मुझे मराठी में गीता का कविता में अनुवाद करने की प्रेरणा हुई। उसे मैंने नाम भी दिया "गीताई" याने गीता माऊली, गीतामाता। अब वह चीज महाराष्ट्र में घर-घर पहुँच गयी है। उसकी तीन लाख से ज्यादा प्रतियाँ बिक चुकी हैं। उस पुस्तक का बहुत आदर होता है। जब मै सोचता हूँ कि इसका इतना आदर क्यो होता है, तो मुझे यही उत्तर मिलता है कि उसके पहले मैंने जो कुछ चिन्तन-मनन किया था और लिखकर अग्निनारायण और गंगा को समर्पित किया था, उसीका यह प्रसाद है। वह मेरे द्वारा नहीं लिखा गया है। मै उसे कोई साहित्यिक कृति नहीं मानता हूँ, उसमें धर्मचिन्तन है। मैंने यह माता की प्रेरणा से ही किया।

साहित्यिक : ईश्वर से भी बड़ा

मै साहित्यिक नहीं हूँ, परन्तु साहित्यिको का आशीर्वाद चाहता हूँ, क्योकि साहित्य की शक्ति पर मेरा बहुत विश्वास है। मै मानता हूँ कि साहित्य की शक्ति परमेश्वर की शक्ति के बराबर पडती है। मैंने यह धृष्टतापूर्ण वाक्य कहा है। परन्तु मै मानता हूँ कि ब्रह्माण्ड मे जो है, उसे ईश्वर की शक्ति माना जाता है। ब्रह्माण्ड में जो है, वह सब साहित्यिकों की वाणी मे आता है। परन्तु जो ब्रह्माण्ड मे नहीं है, वह भी साहित्यिकों

की वाणी में आता है। शश-शृंग ईश्वर की सृष्टि में नहीं है, परन्तु साहित्यिकों की सृष्टि में है। आकाश-पुष्प को किसने देखा था, परन्तु साहित्यिक सृष्टि में वह है। आकाश-गंगा भी आकाश में तो नहीं है, परन्तु साहित्यिक की सृष्टि में है। साहित्यिक तो आकाश में, पाताल में और धरती पर गंगा की धारा देखते हैं। इस तरह वे गगा की तीन-तीन धाराएँ देखते हैं। लेकिन ईश्वर की सृष्टि में गंगा की एक ही धारा है, जो हिमालय से निकलती है और गंगासागर में लीन हो जाती है। इसलिए साहित्यिकों के पास बहुत शक्ति पड़ी है।

साहित्य क्या है ?

मैं आपसे यह नहीं कहूँगा कि आप भूदान-यज्ञ पर लिखिये, क्योंकि ऐसा कहना धृष्टता भी होगी और मूर्खता भी। धृष्टता इसलिए होगी कि साहित्यिक अपना धन्धा जानते हैं। उनको सहज ही क्या-क्या उचित है और क्या-क्या अनुचित, इसकी पहचान हो जाती है। उनसे कुछ कहना नहीं पड़ता। इसलिए जो कहेगा उसकी वह धृष्टता होगी और मूर्खता इसलिए होगी कि कोई भी साहित्यिक दूसरे के कहने से नहीं लिखता। वह तो अन्तःप्रेरणा से लिखता है, जब उसके लिए कोई बाहर का निमित्त कारण मिल जाता है। साहित्यिक जब लिखने बैठते हैं, तो उन्हें ऐसा भान नहीं होता कि उन्होंने जो लिखा है, उससे उन्होंने संसार पर उपकार किया है। यदि ऐसा भान हो जाय, तो वह साहित्य नहीं होगा। साहित्य तो वही है, जो आत्मा के सहित, आत्मा के साथ चलता है। सहित यानी चलनेवाला साथी। इसलिए जब वह अन्दर की गहराई से बाहर आता है, तब सारे संसार को पावन करता है। वह किस गुहा से निकलता है, किसीको मालूम नहीं है। उस गुहा में दुनिया की पहुँच नहीं है। गंगा जब बाहर आती है, तब लोग उसे पहचानते हैं और गंगावगाहन करते हैं, परन्तु वह किस गुहा से निकली है, उसे कोई नहीं जानता।

साहित्यिक और राज्याश्रय

आजकल ऐसा जमाना आया है कि दूसरी ही बातें चलती हैं। उनमें कोई सार नहीं है, ऐसा तो हम नहीं कहते। अभी दिल्ली में 'साहित्य अकादमी' बनायी गयी। क्या हमारे भारत के साहित्य में 'अकादमी' के लिए कोई शब्द ही नहीं मिला? यहाँ पर दस-बारह भाषाएँ हैं और वे दस हजार वर्ष से विकसित हुई हैं। जब उन भाषाओं में उस काम के लिए कोई शब्द ही नहीं मिला, तो वह कार्य क्या चलेगा? विज्ञान की बात दूसरी है। विज्ञान के शब्द चाहे हमारी भाषाओं में न मिलें, परन्तु साहित्य के लिए समुचित शब्द नहीं मिलते हैं, तो वह चीज ही मुझे खटकती है। फिर मैंने सोचा कि खैर, नाम कोई हो, पर काम ठीक हो, तो ठीक होगा। लेकिन काम भी क्या होता है? साहित्यिकों को इनाम दिया जाता है। अब सोचिये कि दुनिया में इनाम से कोई चीज बनती है? तुलसीदास और कबीर को क्या इनाम मिला था? हाँ, हमारे रवीन्द्रनाथ को इनाम मिला था, जिसे 'नोबेल प्राइज' कहा जाता है। इस जमाने में हर बात की कीमत पैसे में आँकी जाती है। किसीने अच्छा साहित्य लिखा, तो उसे अच्छी तरह से खिलाया-पिलाया जाना चाहिए, ऐसा कहा जाता है, लेकिन खिलाने-पिलाने का साहित्य से क्या सम्बन्ध है? हम मानते हैं कि साहित्यिक को जीवन के लिए कुछ चाहिए। लेकिन आज हर चीज की कीमत पैसे में करते हैं और इसलिए इनाम देते हैं। सोचते हैं कि इससे उसको कुछ सहारा मिल जायगा, परन्तु साहित्यिक के जीवन का मूलस्रोत दूसरा ही होता है।

भगवदर्पण

आन्ध्र में पोतना नाम के एक भक्त-कवि हो गये हैं। उन्होंने भागवत का तेलुगु में अनुवाद किया। वे किसान थे, खेती करते थे। बहुत ज्यादा

संस्कृत नहीं जानते थे, लेकिन कुछ जानते थे। इसीलिए तो वे अनुवाद कर सके। उन्होंने ग्रन्थ लिखा, तो उनके मित्रों ने सलाह दी कि यह ग्रन्थ राजा को अर्पण करो, तो इसका खूब प्रचार होगा। उन दिनों साहित्य का आदर करनेवाले राजा होते थे। परन्तु पोतना ने कहा कि 'मैं सोचूँगा' और जब उन्होंने समर्पण पत्रिका लिखी, तो उसमें लिखा कि "यह भगवान् की कृति भगवान् को ही अर्पण करता हूँ।"

पोतना खेती करके मिट्टी में अपना पसीना डालकर अपनी रोटी कमाते थे। बचे हुए समय में उन्होंने भागवत लिखी, तो क्या वह किसी राजा को अर्पण की जा सकती है? हिन्दुस्तान का साहित्य ऐसे ही लोगों के कारण बढ़ा है जिन्होंने लक्ष्मी को माता समझा, दासी नहीं। जो निरन्तर साहित्य का सर्जन करते थे, वे जन-समाज में काम करते रहे और शरीर के लिए जीवनाधार के तौर पर जो कुछ मिलता था, उसीसे सन्तुष्ट रहते थे। उन्होंने राजाओं की परवाह नहीं की। पैसे से वे खरीदे नहीं जा सकते थे। ऐसे ही लोगों से हिन्दुस्तान का साहित्य बढ़ा है। तुलसीदास, कबीर, पोतना, तुकाराम—इस तरह भाषा के सर्वोत्तम साहित्यिकों को देखिये, वे राज्याश्रित नहीं थे। वे भगवान् के आश्रित थे। जन-समाज में जीवन बिताते थे। आप उन्हीं के वारिस हैं।

अन्तःप्रेरणा से ही लिखें

आप साहित्यिक लोग जानते हैं कि जनता में विचार का कौन-सा प्रवाह चलना चाहिए। उससे आपको सहज प्रेरणा मिलेगी। उसीमें आपका भला है, मेरा भला है और हिन्दुस्तान का भला है। आप अन्तःप्रेरणा से ही लिखें। मैं आपसे यह बात कहना चाहता हूँ। हम जीवनशुद्धि का काम सतत करते रहना चाहिए। फिर सहजभाव से आपको जो स्फुरित होगा, उसीसे देश आगे बढ़ेगा।

एक बात और। साहित्यिकों के पास भी तो कुछ सम्पत्ति होती है। तो जहाँ यह सार्वजनिक यज्ञ शुरू हुआ है, उसमें आपको भी अपना हिस्सा समर्पित करना चाहिए। उससे सब लोगों को प्रेरणा मिलेगी। आपके हृदय का भी समाधान हो जायगा कि जनता की जो माँग है, उसमें हमने भी साथ दिया। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इसमें आप कुछ-न-कुछ दें। फिर साहित्य की आपको जो भी प्रेरणा हो, उसके अनुसार आपह में जो भी कृपाप्रसाद दे सकते हैं, दें। मैं आप सबको भक्तिभाव से प्रणाम करता हूँ।

बलरामपुर (मेदिनीपुर)
१२-१-'५५

बहुत खुशी की बात है कि आप लोगों से मिलने का हमें आज अवसर मिला। वैसे उत्तर प्रदेश, बिहार और बगाल,—तीनो बड़े प्रान्तों में हमारी यात्रा हो चुकी है और तीनों प्रान्तो मे साहित्यिको का आशीर्वाद, सहानुभूति और सहयोग भी हमें मिला है। उत्तर प्रदेश मे राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त और सियारामशरणजी गुप्त के प्रयत्न से कुछ साहित्यिको से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ था। बिहार में भी साहित्यिकों ने अच्छा योग-दान दिया। 'बेनीपुरी' जी और 'दिनकर' जी, दोनो ने इस पर कुछ लिखा और काफी सहानुभूति दिखाई। बगाल में तो हमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। वहाँ के प्रतिष्ठित साहित्यिक मिलने आये। बहुत भावनापूर्वक उन्होंने हमारा पूरा हाल सुना। ताराशकरजी बद्योपाध्याय ने 'आनन्द-बाजार-पत्रिका' में इस पर एक लेख भी लिखा। उन्होंने लिखा है कि उनका पूरा हृदय पहले से ही इस आन्दोलन के साथ है। उन तीन प्रदेशो के बाद आपके इस प्रदेश मे हमारा आगमन हुआ।

साहित्यिक सम्प्रदाय से परे

तेलगाना में यह काम शुरू हुआ था। उसे अब चार साल होने आये हैं। इस आन्दोलन ने सबका ध्यान खीचा है। सबसे पहले उन लोगों का उत्साह इस काम से बढ़ा, जो निर्माणात्मक या रचनात्मक कार्य करते थे। यह स्वाभाविक था। जो लोग वर्षों तक गांधीजी के साथ रहे थे और खादी, ग्रामोद्योग, नयी तालीम, ग्राम-सफाई आदि कामो मे लगे हुए थे, वे अपने को कुछ मायूस या निराश-सा महसूस कर रहे थे। उन्हें इस काम मे बहुत ही प्रेरणा मिली। भू-दान-यज्ञ से मानो उनमें नया प्राण-

संचार हुआ, जिसका अनुभव इस प्रदेश में भी हुआ। आपने देखा है कि यहाँ पर गोपबाबू वगैरह इस काम में कूद पड़े हैं और सतत पद-यात्रा कर रहे हैं। प्रथमं बल उनको मिला है, जो स्वाभाविक ही था। बाद में जिनका ध्यान इस आन्दोलन की ओर खिंचा, उनमें हिन्दुस्तान के साहित्यिक थे। यह भी स्वाभाविक ही था। साहित्यिक किसी संप्रदाय के नहीं होते। साहित्यिकों का लक्षण ही यह है कि वे सम्प्रदायातीत होते हैं। जो सम्प्रदाय में बद्ध होते हैं, वे चिरंतन साहित्यिक नहीं होते, वे तो तात्कालिक साहित्यिक होते हैं। चिरंतन साहित्यिक तो सब पंथों, संप्रदायों से भिन्न, परे होते हैं। जीवन के लिए कोई क्रान्तिकारी या बुनियादी घटना घटे, तो वह उनको सहज ही आकर्षक मालूम होती है। फिर वह घटना किसी संप्रदाय या पंथ की ही क्यों न हो, वह अगर बुनियादी चीज है, तो साहित्यिकों को उसके प्रति आकर्षण होता है।

भूदान से गरीबों को आशा

फिर राजनैतिक पक्षवालों का ध्यान इस काम की ओर गया। कांग्रेस, प्रजा-समाजवादी आदि सब पक्षों को लगा कि इस काम का असर राजनीति पर पड़ सकता है। इसलिए उनका भी ध्यान इस ओर खिंचा। गरीबों का तो ध्यान पहले से ही इस ओर था। उनको लगता था कि यह काम तो साक्षात् दरिद्रनारायण के लिए हो रहा है। वे चाहते थे कि स्वराज्य के बाद कोई ऐसा आन्दोलन हो, जिसका उद्देश्य दरिद्रों की सेवा हो। उसका और कोई उद्देश्य न हो। हमने देखा कि स्वराज्य के बाद ऐसा नहीं हुआ। जिनके हाथों में राज्यसत्ता थी, वे कुछ आपत्ति में थे, इसलिए वह न हो सका, लेकिन गरीब लोग तो आशा से देख रहे थे कि स्वराज्य मिल गया है, तो अब हमारी हालत कैसे सुधरेगी? उन लोगों के लिए तो भूदान-यज्ञ अमृत-सिंचन जैसा है। वैसे उनको इस काम

से कोई बहुत ज्यादा मदद तो नहीं मिली है, अब तक सिर्फ छत्तीस लाख[1] एकड भूमि प्राप्त हुई है। यह भूमि बँटेगी तभी उनके पास आयेगी, फिर भी उनको अब तक कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ है, तो भी हिन्दुस्तानभर मे 'दरिद्रनारायण की सेवा' शब्द चल पडा है। 'दरिद्रनारायण' शब्द कोई नया नहीं है। यह शब्द स्वामी विवेकानन्द का है। उनकी कितनी महान् प्रतिभा थी! उन्हे सहज ही यह शब्द सूझा। फिर देशबन्धु दास ने उस शब्द को चलाया और गाधीजी ने उसे व्यापक बना दिया। खादी के आन्दोलन मे गाधीजी ने दरिद्रनारायण के लिए देशभर से पैसा माँगा। उन्हे पैसा मिला और फिर 'चरखा-सघ' शुरू हुआ। उस समय राज्य भी हमारा नहीं था, अग्रेजों का था। देहात के गरीब लोगों को कोई पूछता भी नहीं था। तब गाधीजी ने उनकी ओर सबका ध्यान खींचा। अब स्वराज्य के बाद तो वे आशा करते है कि उनका ही राज्य होगा। अब प्रथम कार्य गरीबो के उत्थान का ही होगा। लोग तो यहाँ तक सोचते थे कि 'वाइसरीगल लाज'[2] का अब दवाखाना बनेगा। गाधीजी ने भी यही बात कही थी। खैर, वह बात नहीं हुई। उस समय मै दिल्ली में शरणार्थियो में काम कर रहा था। वे लोग कहते थे कि गाधीजी ने 'वाइसरीगल लाज' का दवाखाना बनाने को कहा था, लेकिन वह नहीं हो रहा है। उस समय उनके लिए घर भी नहीं थे, तो उनकी नजर उस बडे मकान की तरफ गयी। वे कहने लगे कि इतने बडे मकान में थोडे-से ही लोग रहते है। खैर, वह भी नहीं हुआ।

गांधीजी की असामान्य प्रतिभा

हम तो समझते है कि गाधीजी की असामान्य प्रज्ञा थी, जिससे

---

१ अब यह परिमाण ता० ३१-१-'५६ तक ४२,६३,२८० एकड तक पहुँच गया है।

२ राष्ट्रपति-भवन।

वे सामान्य जनता के साथ फौरन एकरूप हो जाते थे। उन्हें कुछ सोचना ही नहीं पड़ता था। एक मुट्ठीभर नमक क्या चीज थी! किसका ध्यान उस पर जा सकता था? हाँ, गोखले असेम्बली में कभी बोले थे कि नमक पर टैक्स नहीं होना चाहिए। उसका आधार लेकर गांधीजी ने कहा कि नमक तो मुफ्त मिलना चाहिए। हमारी भाषा में एक शब्द है, 'नमकहराम'। उसका मतलब यह है कि सारे जीवन को रुचि या स्वाद देनेवाला पदार्थ अगर कोई है, तो वह नमक है। अंग्रेजी में 'ब्रेड एंड बटर' कहा जाता है। लेकिन हमारे यहाँ तो रोटी के साथ नमक चलता है, 'नमक-रोटी' कहा जाता है। गांधीजी ने कहा कि हम नमक बनायेंगे और अंग्रेजों का कानून तोड़ेंगे। लोग देखते रहे कि इससे क्या कानून तोड़ना होगा, परन्तु वह बात हुई; क्योंकि वह बुनियादी चीज थी। वैसे ही शराब की दूकानों पर पिकेटिंग करने की बात लीजिये। उन्होंने बहनों से पिकेटिंग करवायी। तब चर्चा चल रही थी कि शराब की दूकानों पर किसे भेजा जाय, क्योंकि वे तो गुंडों के अड्डे होते हैं। सबसे नीचे के स्तरवाले लोग वहाँ पहुँचते हैं। तब गांधीजी ने कहा कि वहाँ बहनों को भेजना चाहिए। और बहनों की क्या हालत थी? वे तो घर के बाहर भी नहीं निकलती थीं। परदे के अन्दर ही रहती थीं। उनके हाथ में गहने होते थे, यानी श्रृंखला होती थी। सोने की ही सही, पर थी श्रृंखला ही। उन्हें भीरु भी कहा जाता था। ऐसी बहनों को बदमाशों का सामना करने की यह सूचना बड़ी विचित्र मालूम हुई। लोगों ने कहा कि वहाँ का वातावरण तो बड़ा गन्दा होता है, गालियाँ बकी जाती हैं, वहाँ बहनें कैसे जा सकती हैं? तब गांधीजी ने कहा कि बहनें तो सभ्यता और संस्कृति की मूर्ति हैं न! अतः जहाँ असंस्कृति है, वहाँ संस्कृति को भेजना चाहिए। वहाँ तो सद्भावनावालों को ही भेजना चाहिए। अन्धकार का मुकाबला प्रकाश से ही हो सकता है। बहनें वहाँ पर गयीं और लोग उनको

देखकर शर्मिन्दा हुए। यह सब गाधीजी की सूझ थी। जिनकी दुनिया में कोई कीमत नहीं है, उनके साथ एकरूप होने की अद्भुत सूझ उनमें थी और वह बिलकुल सहज होती थी।

साहित्यिक चिनगारी को पहचानते हैं

इन बातों से आजादी की लड़ाई को जोर मिला। कुछ लोग तो उल्टा सोचते थे। वे कहते थे कि शराब-बन्दी, खादी वगैरह चीजें स्वराज्य-आन्दोलन के साथ जोड़ दी गयीं, इसलिए उनमें जोर आ गया। लेकिन वे नहीं समझते थे कि ये तो जीवनदायिनी चीजें हैं, उनके कारण स्वराज्य-आन्दोलन में नैतिकता आयी। फिर स्वराज्य आया। उसके बाद फिर अब कुछ बात करनी है, तो गरीबों के लिए ही करनी है। फिर भू-दान-यज्ञ चला। छत्तीस लाख एकड़ भूमि हमें मिली। यह कोई बड़ी बात नहीं है; लेकिन है अत्यन्त महत्त्वपूर्ण। अगर जमीन ही गिनी जाय, तो क्या चीज है। हिन्दुस्तान में तीस-चालीस करोड़ एकड़ जमीन है, वहाँ यह छत्तीस लाख एकड़ जमीन एक प्रतिशत ही तो हुई। लेकिन साहित्यिकों के लिए वह विशेष बात है, क्योंकि वे चिनगारी को पहचानते है। दूसरों के लिए तो पेट्रोमैक्स की जरूरत होती है, लेकिन साहित्यिकों के लिए एक चिनगारी ही बस है। वे प्रकाश का अंकुर देखते है, तो परीक्षा कर लेते हैं। दूसरे तो बीज से भी परीक्षा करना नहीं जानते, वे जब फल चखते हैं, तभी जानते हैं कि फल खट्टा है या नहीं। लेकिन साहित्यिकों का स्वाद बिगड़ा हुआ नहीं है। उनका स्वाद स्वच्छ और निर्मल होता है।

साहित्यिकों के लिए हमारी भाषा में 'कवि' शब्द का इस्तेमाल किया गया है—"कवि: क्रान्तदर्शी।" कुछ सतरें, क ख ग लिख डालने से कोई कवि नहीं होता। जिसे क्रान्तदर्शन है, जिसे उस पार का दर्शन है—जहाँ का दुनिया को दर्शन नहीं है, क्योंकि दुनिया की आँखों पर परदा पड़ा है,

ऐसा दर्शन जिनको है–वे कवि कहे जाते हैं। कवि को तो प्रातिभदर्शन होता है, मामूली आँख का दर्शन नहीं। जरा इशारा या निशानी मिल जाय, तो उन्हें मालूम हो जाता है। अब तो हमें कुछ जमीन मिली है, लेकिन जब उत्तर प्रदेश में थे, तब तो हमें ज्यादा जमीन नहीं मिली थी। फिर भी मैथिलीशरणजी और सियारामशरणजी को इस काम के प्रति आकर्षण हुआ और उन्होंने कहा कि "अरे, यह तो भारत का हृदय है।" हृदय तो छोटा होता है अँगूठे के जैसा, लेकिन उसके अन्दर जो ज्योति है, वही आत्म-तत्त्व है। वह बिलकुल ही छोटा होता है, अणुमात्र : "अणोरणीयान् महतो महीयान् !" परन्तु इसकी प्रभा इतनी व्यापक होती है कि महान्-से-महान् चीज वही होती है। छोटी-सी चीज में भी चेतना होती है, तो वह अलग से दीखती है।

विवेकानन्द ने कहा था कि चलती ट्रेन में बहुत ताकत होती है। लेकिन पटरी पर की छोटी-सी चींटी ने देखा कि राक्षसी दौड़ी आ रही है, तो वह हट जाती और बच जाती है। ट्रेन कितनी ही बड़ी हो, फिर भी चींटी उससे बच जाती है; क्योंकि वह राक्षसी बेवकूफ होती है। वह तो अचेतन है और चींटी में चैतन्य होता है, जिसके कारण वह बच सकती है। उसको मारने की शक्ति ट्रेन में नहीं होती। जिसमें चेतन का अंश है, वह बात साहित्यिकों को आकर्षक मालूम होती है। इसलिए हम चाहते है कि आप तटस्थ बुद्धि से इस काम की ओर देखिये, चारण मत बनिये। उदासीन होकर उसकी ओर देखिये। मैंने 'उदासीन' शब्द संस्कृत के अर्थ में इस्तेमाल किया है। "उत् आसीनः"—यानी ऊँचा बैठा हुआ। यह अहिंसा का विचार है। सर्वोदय का या किसी खास संप्रदाय का विचार है, इस दृष्टि से मत सोचिये। स्वतंत्र बुद्धि से सोचिये। यह सोचिये कि इसका क्रान्त-दर्शन क्या हो सकता है ?

भारत का गौरव : ब्रह्म-विद्या

हिन्दुस्तान की भव्यता का वर्णन अनेक लोग अनेक प्रकार से करते है। कहते है कि हिमालय जैसा पहाड नहीं, गंगा जैसी अद्भुत नदी नहीं। और भी कई बातें कही जाती है। तो इसके पीछे ममत्व है, इसलिए यह महत्ता हमे प्रतीत होती है। ममत्व न हो तो वह नहीं प्रतीत होगी। यों तो हर देश-वासी को अपने देश के लिए ममत्व होता है, इसलिए महत्त्व मालूम होता है। हम भी कहते है **"सारे जहाँ से अच्छा।"** अगर पूछा जाय कि क्या अच्छा ? तो कहते है 'हमारा'। अगर वह 'हमारा' छोड दें और केवल तुलना के लिए खडे हो जायें, तो वह बात नहीं रहती।

हिन्दुस्तान की मिट्टी अमेरिका की मिट्टी से अधिक अच्छी है, ऐसी बात नहीं है। यों तो अमेरिका की मिट्टी ही बिल्कुल ताजी है—'फ्रेश' है, उसमे से अधिक फसल पैदा हो सकती है। वहाँ पर कितनी बडी-बडी नदियाँ है ! उनके सामने हमारी गंगा नदी क्या है ! हाँ, यह हिमालय पर्वत दुनिया में सबसे ऊँचा है, पर उसको छोडकर दूसरी ऐसी कोई चीज हमारे पास नहीं है, जिसके आधार पर हम दावा कर सकें कि हिन्दुस्तान श्रेष्ठ है, परन्तु ममत्व के कारण हम ऐसा दावा करते है।

मेरा दावा यह नहीं है कि हिन्दुस्तान की कुदरत दूसरे देशों की कुदरत से अच्छी है, लेकिन मेरा दावा यह है कि हिन्दुस्तान में ब्रह्म विद्या निकली है, जिसकी ताकत से यह भूदान-यज्ञ चला है, उस जोड़ की वस्तु दुनिया में नहीं है। यह बात हम बिल्कुल तटस्थ होकर कह रहे हैं। हमने दुनिया की बहुत-सी भाषाओं और साहित्य का अध्ययन किया है। किन्तु दुनिया की किसी भी भाषा में ऐसा साहित्य नहीं है, जो निडरभाव से कहे कि 'तत्त्वमसि'—'तू वह है' और वही हमारा धर्म है। इसी वास्ते हम भारत का गौरव मानते हैं। यह गौरव स्वतंत्र दृष्टि से भी सिद्ध होता है। भारत 'सारे जहाँ से अच्छा' है, क्योंकि यहाँ पर ब्रह्म विद्या है।

मांसाहार निवृत्त

यह 'ब्रह्म विद्या' ऐसी नहीं है कि उसके साथ-साथ अन्धकार भी रहे, भ्रम भी रहे। यह ब्रह्म विद्या इतनी ताकतवर है कि उसके सामने अन्धकार टिक नहीं सकता, भ्रम रह नहीं सकता। उसीके बल के कारण यहाँ करोडो लोगो ने मासाहार छोडा। दुनिया के दूसरे देशों में आज प्रयोग हो रहे हैं। वे बालवत् प्रयोग कर रहे है—'वेजीटेरियन रेस्टरेंट' खोलते है। कुछ लोग वहाँ जाते है। इस तरह वहाँ पर नया आरम्भ हुआ। जो आन्दोलन हिन्दुस्तान में दस-दस हजार साल पहले हो चुके, उनका आगमन पाश्चात्य देशो में अब हो रहा है। अब जनसख्या बढ रही है, तो उनको अनुभव हो रहा है कि मासाहार करते है, तो हर मनुष्य के पीछे दो एकड जमीन की जरूरत होती है। दूध लेते है और शाकाहार करते है, तो एक एकड जमीन की जरूरत होती है। केवल शाकाहार और धान्याहार करते है, तो आधे एकड में काम चल जाता है। पाश्चात्य लोग वैज्ञानिक होते है, इसलिए वे इस तरह का हिसाब करते है। मेरा मानना है कि वे धीरे धीरे मासाहार छोडने की तरफ आयेंगे। उनके ध्यान मे आयेगा कि पशुओं को खाना गलत है। लेकिन हिन्दुस्तान मे तो यह बात तभी फैल चुकी, जब जनसख्या अधिक नहीं थी। पाश्चात्य देशो में तो जनसख्या बढ रही है, इसलिए अब मासाहार छोडने की बात चलेगी।

हमने सुना है कि हिटलर ने मासाहार छोड दिया था, क्योंकि मास के टीन दक्षिण अमेरिका ओर अर्जेण्टाइना से आते थे। वहाँ पर बैलो की हत्या होती थी ओर फिर टीन में भरकर मास बाहर भेजा जाता था। बैलो को टीन का आकार मिलता था और सुन्दर-सुन्दर टीन में बैठकर वे बैल मनुष्य के पेट मे प्रवेश करने के लिए आते थे। जर्मनी ने सोचा कि लडाई छिड जायगी ओर इन टीनो का आना बन्द हो जायगा तो हमारी क्या हालत हो जायगी,

इसलिए जर्मन लोग शाकाहार का प्रयोग करने लगे। उधर मासाहार छोड़ने की जो प्रेरणा हुई, उसके पीछे परिस्थिति का प्रभाव था। वैसे हरएक देश में सही विचार करनेवाले और सत्य शोधन करनेवाले कुछ लोग तो होते ही हैं, परन्तु जनता उनके पीछे तब जाती है, जब पीछे जाना अनिवार्य हो जाता है। लेकिन हिन्दुस्तान में तो जब जनसंख्या कम थी, तभी यह बात चल पड़ी थी।

शाकुंतल में आता है—"आश्रमम् मृगो अयम् न हन्तव्यो न हन्तव्यः।" राजा दुष्यन्त शिकार के लिए वहाँ पर आता है, तो आश्रम का बच्चा निर्भयता से उसे कहता है कि "न हन्तव्यो न हन्तव्यः।"—यह आश्रम का मृग है, इसे मत मारो। इस तरह आज कौन लड़का बादशाह से यह बात कह सकेगा? लेकिन उस बच्चे ने दुष्यन्त से कहा, और फिर दुष्यन्त ने मृग को छोड़ दिया। यह हिन्दुस्तान की सभ्यता और संस्कृति है। यह इसलिए हुआ कि यहा पर ब्रह्म-विद्या थी। परिस्थिति के दबाव से तो प्रयोग होते ही हैं, लेकिन यहाँ पर मासाहार-परित्याग का जो प्रयोग चला, वह ब्रह्म-विद्या के कारण चला। ब्रह्म-विद्या कहती है कि हम सब आत्म-रूप हैं। इसलिए कौन किसको खायेगा?

गांधी जैसे अंकुर

हमारे यहाँ ये जो गाधी वगैरह उत्पन्न हुए हैं, यह कोई चीज नहीं है। हिन्दुस्तान की भूमि में ऐसी शक्ति है कि इस भूमि में से ऐसे ही अंकुर निकल सकते हैं, दूसरे अंकुर नहीं निकल सकते। लोग इतिहास लिखने बैठते हैं, स्वतंत्रता के आन्दोलन का इतिहास लिखने बैठते हैं। किसने क्या किया, किसने कितना क्या किया, यह सब लिखते हैं। वे कागज देखकर लिखते हैं और कहते हैं कि पूरे कागज नहीं मिल रहे हैं। अरे! कागज में क्या रखा है। क्या हिन्दुस्तान का इतिहास कागज में

लिखा है ? हिन्दुस्तान का इतिहास तो आसमान में लिखा है। उधर देखो विश्वामित्र, वशिष्ठ, अरुन्धती, सप्तर्षि, सब वहाँ पर हैं। हिन्दुस्तान का इतिहास देखना है, तो आकाश में देखो। यहाँ पर कितने ही राजा आये और गये, लेकिन नाम चलता है केवल राजा-राम का। सिर्फ हिन्दुओं की यह हालत नहीं है, हिन्दुस्तान के मुसलमान भी इसी मनोवृत्ति में पले हैं।

मैं मेवातों में काम कर रहा था। उजड़े हुए मुसलमान भाइयों को बसाने का काम कर रहा था। एक दिन उनकी सभा में मैंने पूछा, "क्या आप अकबर बादशाह को जानते हैं ?" उन्होंने जवाब दिया, "नहीं जानते।" फिर पूछा, "आपने अकबर का नाम नहीं सुना ?" उन्होंने कहा, "सुना है, अल्ला हो अकबर, अल्ला हो अकबर।" यह तो हिन्दुस्तान के मुसलमानों की हालत है ! यहाँ पर राजा राम का नाम ही मालूम है। दूसरा राजा ही हमारे देश के निवासी नहीं जानते। फिर ये छोटे-छोटे इतिहास लिखकर क्या करते हो ?

वेदों से लेकर उपनिषद् तक एक धारा चली आ रही है। बुद्ध, महावीर और असंख्य सत्पुरुषों का एक प्रवाह चला आ रहा है। उसी प्रवाह में गांधीजी आये। उनका आना लाजिमी था। वे नहीं आते तो क्या करते ! हम तो उन्हें बहुत बड़ा महात्मा आदि कहते हैं, परन्तु वे जानते भी थे और कहते थे कि 'हम कुछ नहीं है।' यह बात सही भी है। यहाँ पर ऐसा सनातन धर्म है, तो ऐसा आचरण होता ही है। हम इसीमें पैदा हुए हैं। इस देश की महत्ता इसीमें है कि यहाँ का जो सारस्वत है, साहित्य है, उसमें जो ऊँचे विचार मिलेंगे, वैसे विचार दुनिया की दूसरी भाषाओं में नहीं मिलेंगे। बाकी जो हिन्दुस्तान का वैभव कहा जाता है, वह तो मलमल के कारण ही।

तमिल कवि सुब्रह्मण्यम् ने कहा है कि हिमालय जैसा दूसरा पहाड़ नहीं है और उपनिषद् जैसी दूसरी पुस्तक नहीं है। आखिर आपके पास एक

ही तो भौतिक चीज है और वह है हिमालय। यह जो अद्वितीय चीज है उसीकी मिसाल उस कवि ने पेश की। दूसरी चीजें तो दुनिया में भी है। इसलिए अगर हमारी सबसे बड़ी कोई चीज है, तो वह है हमारा साहित्य। आजकल कहा जाता है कि संस्कृत भाषा तो अब मर गयी। आखिर यह मरना-जीना क्या है ? बीज मर गया और वृक्ष पैदा हुआ, तो क्या बीज मर गया ? जहाँ बीज मरा, परन्तु बीज में से पेड़ पैदा हो गया, वहाँ पर बीज नहीं मरा। जहाँ पेड़ ही नहीं पैदा होता है, वहाँ समझ लीजिये बीज मर गया, निर्जीव हो गया। यह जो हिन्दुस्तान की भाषाएँ हैं, सब संस्कृत से पैदा हुई हैं। तो उस बीज में से आज विशाल वृक्ष पैदा हुआ है। इसलिए यहाँ की हर भाषा में भक्ति का साहित्य मौजूद है। जो शक्ति बीज में थी, वही शक्ति इन भाषाओं में भी आयी है। तो हिन्दुस्तान का वैभव ही यहाँ का साहित्य है, दर्शन है। संस्कृत में जो नाटक और कहानियाँ लिखी गयीं, वैसी तो दुनिया की दूसरी भाषाओं में भी लिखी गयी हैं। हम यह दावा नहीं कर सकते कि यहाँ पर जैसा अद्भुत इतिहास लिखा गया, वैसा दुनिया की दूसरी भाषा में नहीं लिखा गया। लेकिन हम यह दावा कर सकते हैं कि हिन्दुस्तान में जो ब्रह्म-विद्या निकली, इसकी अनेक शाखाएँ पैदा हुई, अनेक दर्शन हुए। इन सबकी बराबरी करनेवाली चीज दुनिया में दूसरी कोई नहीं है।

ब्रह्म-विद्या किसी विशेष भूमि की वस्तु नहीं है। वह तो सारी दुनिया की चीज है। वह तो एक संयोग था, इत्तिफाक था कि वह चीज यहाँ पर पैदा हुई। वह चीज यहीं पर क्यों पैदा हुई ? इसका कारण हम नहीं जानते। ब्रह्म-विद्या कोई ऐसी चीज नहीं है कि जो साल-दो साल में फैल जाय। वह तो हजार-हजार सालों में फैलती है। लेकिन हम प्रत्यक्ष आँख से देखते हैं कि यह चीज दुनिया में फैलनेवाला है। आज का जो विज्ञान है, वह तो उसके सामने बालक है। परन्तु जैसे-जैसे वह प्रौढ़ होता

जायगा, उसकी आत्मा का भान होता जायगा। आज कुछ भान हो भी रहा है। जो आधुनिकतम वैज्ञानिक माने जाते हैं, उनको यह भान हो रहा है कि शायद कुछ चेतन है। साठ साल पहले तो विज्ञान अन्धकारमय था। उस समय वैज्ञानिक ऐसा तो नहीं कहते थे कि ईश्वर है ही नहीं। वे नास्तिक नहीं थे। वैज्ञानिक नास्तिक नहीं, नम्र होते हैं। वे कहते थे कि इसके बारे में हम कुछ भी नहीं कह सकते, लेकिन अब कहते हैं कि इसमें कुछ मूल तत्त्व होना चाहिए और हमारा विश्वास है कि भारत की सारी-की-सारी ब्रह्म-विद्या विज्ञान के जरिये सही सिद्ध होनेवाली है।

ब्रह्मतत्त्व सर्वत्र है

आजकल कुछ लोग कहते हैं कि श्रद्धा नष्ट हो रही है; लेकिन हम कहते हैं, विज्ञान के कारण श्रद्धा की जरूरत ही नहीं रहेगी। मानव को अनुभव आयेगा और वही अनुभव कहेगा कि सारी दुनिया में ब्रह्मतत्त्व पड़ा है। विज्ञान तो प्रयोग करता है। आज विज्ञान और गणित के कारण ब्रह्म-विद्या का जितना स्पष्ट दर्शन हमें होता है, उतना स्पष्ट दर्शन प्राचीनकाल के लोगों को नहीं होता था। उनके सामने तो स्थूल उपमाएँ थीं। उपनिषदों में कथा-कहानियाँ आती हैं। पिता पुत्र को ज्ञान दे रहा है। उसमें वट-वृक्ष की उपमा का उपयोग किया गया है। पिता कहता है कि छोटे-से बीज में से एक विशाल वट-वृक्ष पैदा होता है, छोटे-से बीज में जो नहीं दिखाई देता है, वह विशाल वट-वृक्ष उसमें छिपा हुआ होता है। वैसे ही आत्मा का स्वरूप होता है। इसलिए हे सौम्य, तुम श्रद्धा रखो। आखिर उसे यह कहना पड़ा—"श्रद्धस्व सौम्य !" लेकिन आज तो हमारे पास सूक्ष्म मिसालें हैं। यह 'एटम' का युग है, ऐसा कहा जाता है। लेकिन 'एटम' से तो ब्रह्म-विद्या साफ दीख पड़ेगी। यह चेतन-शक्ति कण-कण में प्रवेश कर सकती है। उसका साक्षात् दर्शन होगा। पहले तो आत्मा का दर्शन

नहीं होता था, न आत्मा कानों से सुनी जा सकती थी। "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यः", लेकिन उसको आत्मा का द्रष्टव्य और श्रोतव्य स्वरूप नहीं मालूम था। उनकी आकांक्षा थी कि आत्मा आँखों से दीख पड़े, कानों से सुनाई दे, लेकिन अब तो आत्मा आँखों से दिखाई देगी, कानों से सुनाई देगी। चन्द दिनों के बाद ऐसी हालत होगी कि आत्मा आँखों के सामने दीख पड़ेगी।

अब रेडियो आया है तथा और भी बहुत-सी चीजें आयी हैं। हम गांधीजी के व्याख्यानों के रेकार्ड सुनते हैं और उनकी आवाज पहचानते हैं, यानी मरने के बाद भी हम आवाज सुनते हैं और पहचानते हैं कि वह बापू की ही आवाज है। इसका मतलब यह हुआ कि शब्द व्यापक और नित्य है। मीमांसकों का बड़ा वाद चलता था कि शब्द नित्य है या अनित्य? लेकिन आज यह बात सिद्ध हो गयी है कि शब्द नित्य है, उसे पकड़ने की तरकीब मालूम हो जाय, तो उसे हम पकड़ सकते हैं। इसका मतलब है कि कान से परे कोई शक्ति हमारे हाथ आयी है। कान की शक्ति बढ़ी है। इस तरह आँख की भी शक्ति बढ़ेगी। विज्ञान से हमें दृष्टि में आत्मा का साक्षात् दर्शन होगा। जो-जो साहित्य यहाँ पैदा हुआ, जिससे आत्म-विद्या प्रकट हुई, उसका हमें अभिमान है।

भूदान और राजनीति

आप भूदान-यज्ञ की तरफ राजनैतिक, सामाजिक आदि सामान्य दृष्टि से मत देखिये। हाँ, यह बात ठीक है कि राजनीति पर भी इसका असर होनेवाला है और राजनीति के बदले लोकनीति आनेवाली है, यह हमारा दावा है। परन्तु ये सब दावे गौण हैं। हमारा मुख्य दावा तो यह है कि ब्रह्म-विद्या के परिणामस्वरूप यहाँ की हवा में जो अहिंसा है, उसका चिह्न भूदान-यज्ञ में प्रकट होता है। इस दृष्टि से आप इस काम की ओर देखिये।

वाणी की उक्ति

मैंने बंगाल में ताराशंकर बंद्योपाध्याय से कहा था कि आपसे हमें वाग्दान चाहिए। उन्होंने कुछ सम्पत्तिदान दिया था, तो हमने कहा कि आपने संपत्ति-दान दिया, सो तो ठीक किया। जो चीज आपके पास पड़ी थी और जिसका आपके पास होना जरूरी नहीं था, वह आपने दे दी, तो ठीक ही किया, लेकिन वाग्दान दीजिये। वाणी की उक्ति बहुत बड़ी होती है। स्वच्छ निर्मल वाणी की शक्ति बहुत बड़ी है। आखिर आप इसी भूमि में पैदा हुए हैं, तो आप जायँगे कहाँ? जो मूल है, हिन्दुस्तान का जो मूल स्रोत है, उसे छोड़कर आप कहाँ जायँगे? शब्द तो हिन्दुस्तान के ही बने हुए हैं। आप वे ही शब्द इस्तेमाल करेंगे। उन शब्दों में जरा वारीकी से देखना होता है। उनमें कितनी सुविधा भरी हुई है। क्या पानी, क्या पेड़। पेड़ शब्द के लिए अंग्रेजी में एक ही शब्द है 'ट्री', लेकिन हमारी भाषा में तो पेड़ के लिए पचासों शब्द हैं। कहा जा सकता है कि इन पचासों शब्दों की क्या जरूरत है, नाहक परिग्रह क्यों बढ़ाना चाहिए। लेकिन यहाँ पर पेड़ के लिए जो पचासों शब्द हैं, वह इसलिए कि वस्तु की ओर सूक्ष्म दृष्टि से देखना होता है। पृथ्वी के लिए अंग्रेजी में एक शब्द 'अर्थ' है। हाँ, इसमें भी कुछ अर्थ है—पृथ्वी अर्थमती। पृथ्वी का मतलब है, फैली हुई। दूसरा शब्द है, धरा यानी धारण करनेवाली। तीसरा शब्द है, गुर्वी यानी भारी। चौथा शब्द है, उर्वी यानी व्यापक। पाँचवाँ शब्द है, क्षमा यानी सहन करनेवाली। तो एक ही पृथ्वी के लिए पचासों शब्द हैं। इस तरह वे लोग पृथ्वी को परमात्म-रूप में देखते थे।

सारी सृष्टि में चैतन्य

परमेश्वर के कौन-कौन गुण हैं, जो यहाँ पर प्रकट हुए हों। उन गुणों को वे देखते थे और एक-एक गुण के लिए एक-एक नाम देते थे। इस तरह एक वस्तु के पचासों गुण देखते थे। किसी कवि को लिखने में

सुभीता हो इसलिए नहीं, बल्कि इसलिए कि उस वस्तु के अन्दर उन्हें अनेक गुणों का दर्शन होता था। सारी सृष्टि में वे चेतन देखते थे। जैसे चेतन में अनेक गुण होते हैं, वैसे सब गुण पदार्थ में होते है। इसलिए एक ही वस्तु के लिए पचासों शब्द बनाये गये है। उन शब्दों को छोड़कर आप लिख नहीं सकते है। उन्हीं शब्दों के आधार पर आप लिखेंगे। आप कितने ही गये-बीते क्यों न हो, आप जो लिखेंगे उसमें आत्म विद्या का प्रकाशन आपके रहते-न-रहते, आपके पहचानते-न-पहचानते होगा। यह टल नहीं सकता। आप पर हमारी यह श्रद्धा है, क्योंकि आप 'अमृतस्य पुत्रा' है। आप सब लोग जो अमृत के पुत्र है, कितने भी मुर्दा बने हो, तो भी वह अमृत जायगा कहाँ ? इसलिए हिन्दुस्तान के साहित्यिकों में कुछ बात है। यह हमारी श्रद्धा है और अनुभव भी है।

घालेश्वर (उत्कल)
६-२-'५५

तुकाराम का एक वचन है। परमेश्वर को संबोधित करके वह कहता है, "तेरे नाम की महिमा तू नहीं जानता, हम जानते है।" वैसे ही साहित्यिकों की महिमा साहित्यिक नहीं जानते। जो अपने लिए अभिमान रखनेवाले साहित्यिक होते है, वे साहित्य का भी अभिमान तो रखते होंगे, परंतु उसकी महिमा नहीं जानते। वे यदि साहित्य की महिमा जानते होते, तो अभिमान न रखते। साहित्य की महिमा विशाल है। मुझे साहित्य की महिमा का भान इसलिए है कि मै साहित्यिक नहीं हूँ। साहित्यिक न होने भर से उसकी महिमा का भान होता है, ऐसी बात नहीं। एक अवसर होता है। किसीको हासिल होता है, किसीको नहीं हासिल होता। मुझे वह अवसर हासिल हुआ—अनेक भाषाओं के साहित्य का आस्वादन करने का। हरएक भाषा का जो विशेष साहित्य है, वही मेरे पढने मे आया है। उसका असर भी मुझ पर बहुत हुआ है। इसलिए बेनीपुरीजी ने बिहार में जो बात कही—जहाँ मै जाऊँ, वहाँ के साहित्यिकों को बुलाने की—वह मुझे सहज ही हृदयग्राह्य हुई।

साहित्य यानी अहिंसा

मै अपने मन में जब साहित्य की व्याख्या करने जाता हूँ और व्याख्या करने का मुझे शौक भी है, तब उसकी व्याख्या करता हूँ—"साहित्य यानी अहिंसा।" अब यह सुनकर लोग कहेंगे कि यह तो खब्ती है, हर जगह अहिंसा लाता है। परतु साहित्यकारों ने भी उसकी व्याख्या की है कि सर्वोत्तम साहित्य 'सूचक' होता है। 'सूचक साहित्य' को सर्वोत्तम क्यों माना जाता है? इसलिए कि वह सुननेवाले पर आक्रमण नहीं करता। किसी

पर अगर उपदेश का प्रहार होने लगे, तो यद्यपि वह उपदेश हितकर हो, फिर भी उसका स्पर्श शीतल नहीं होता। बचपन में हम ईसप की नीति-कथाएँ पढ़ते थे, उनका तात्पर्य नीचे लिखा हुआ होता था। तात्पर्य यानी न पढ़ने का अंश, ऐसा हम समझते थे। कथा का तात्पर्य अगर चंद शब्दों में लिखा जा सका, तो मैं समझूँगा कि कथा लिखनेवाले में कोई कला नहीं है। अभी बेनीपुरीजी ने कहा कि "भूदान-यज्ञ शब्द किसके साहित्य में कितनी दफा आया, इस पर से लोग हिसाब लगाते हैं कि यह साहित्य भूदान-यज्ञ का सहायक है या नहीं?" इसके साहित्य में पचास बार भूदान शब्द आया, उसके साहित्य में पाँच सौ बार आया, ऐसी सूची बनाते हैं और गिनती करते हैं।

साहित्य-बोध का अर्थ

उत्तम कृति का लक्षण यही है कि जैसे रामचन्द्र को देखने पर अनेक लोगों ने अनेक कल्पनाएँ अपनी-अपनी भावना के अनुसार कीं, वैसे ही जिस बोध से अनेकविध तात्पर्य निकलते हैं, वही साहित्य-बोध है। कानून की किताब में इससे बिल्कुल उल्टी बात होती है। एक वाक्य में से एक ही अर्थ निकलना चाहिए, दूसरा नहीं निकलना चाहिए। अगर एक वाक्य में दो अर्थ निकले, तो वकीलों की कम्बख्ती आ जाती है। पर साहित्य की प्रकृति इससे बिल्कुल उल्टी होती है। गीता उत्तम साहित्य है, रामायण उत्तम साहित्य है; क्योंकि उनके तात्पर्य के विषय में मतभेद है। जिस साहित्य के तात्पर्य के विषय में मतभेद न हो और तात्पर्य निश्चित किया जा सके, उसमें साहित्य-शक्ति कम प्रकट होती है।

प्रसिद्ध महर्षिवाक्य है—"परोक्षप्रिया इव हि देवाः, प्रत्यक्षद्विषः।" देव परोक्षप्रिय होते हैं। उन्हें परोक्षवाणी पसन्द आती है, प्रत्यक्षवाणी पसन्द नहीं आती। इसका मर्म भी यही है कि प्रत्यक्ष उपदेश में कुछ

चुभने का माद्दा होता है। वाल्मीकि की रामायण जब हम पढ़ते हैं, तो उसमें बहुत ज्यादा उपदेश के वचन नहीं आते; कथागंगा बहती जाती है, मनुष्य उसके साथ-साथ बहता जाता है। अनेक मनुष्यों को अनेकविध तात्पर्य हासिल होते हैं और एक ही मनुष्य को समयानुसार अनेकविध तात्पर्य हासिल होते है। साहित्य की विशेषता इस विविधता में है। इसलिए जब हम साहित्यिकों से कुछ अपेक्षा रखते है, तो इसका मतलब यह नहीं कि वे अपनी विशेषताओं को छोड़कर हमारा काम करें। उनकी विशेषता यही है कि साहित्य से विविध बोध मिलते है।

वाल्मीकि की प्रेरणा

ईश्वर के प्रेम के बारे में भक्तजन कहते है कि वह प्रेम अहेतुक होता है, उसमें हेतु नहीं होता। प्रेम करना ईश्वर का स्वभाव है। वैसे ही साहित्य में भी कोई हेतु नहीं होता। साहित्य एक स्वयंभू वस्तु है। लेकिन हेतु रखने से जो नहीं सध सकता, वह साहित्य में बिना हेतु रखकर सधता है, यह साहित्य की खूबी है। गीता भी मुझे इसीलिए प्यारी है कि वह हेतु न रखना सिखाती है। वह एक ऐसा ग्रन्थ है, जो यहाँ तक कहने का साहस करता है कि निष्फल कार्य करो। निष्फल कार्य की प्रेरणा देनेवाला ऐसा दूसरा ग्रन्थ दुनिया में मैने नहीं देखा। साथ-ही-साथ वह (गीता) जानती है कि जिसने फल की आशा छोड़ी, उसे अनंत फल हासिल होता है। वाल्मीकि रामायण के आरंभ की ऐसी ही कहानी है। शोकः श्लोकत्वमागतः। यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः—क्रौंचमिथुन का वियोग वाल्मीकि को सहन नहीं हुआ, शोक हुआ और उसकी वाणी से सहज ही श्लोक निकल पड़ा। उसे मालूम भी नहीं था कि उसका शोक श्लोकाकार बना। बाद में नारद ने आकर कहा, "तेरे मुँह से यह श्लोक निकला है। इसी अनुष्टुप् छंद में रामायण गाओ।" फिर सारी रामायण अनुष्टुप् छंद में गायी गयी। सहानुभूति की प्रेरणा से काव्य पैदा हुआ और शोक का श्लोक बना।

शम और श्रम का संयोग

मैंने साहित्य की जो व्याख्या की, उसमें भी यही विशेषता है। साहित्य में ऐसी शक्ति है कि उससे श्रम का शम बन जाता है। बिना श्रम के कोई भी महत्त्व की चीज नहीं बनती, लेकिन साहित्य में श्रम को शम का रूप आता है। दूसरी चीजों में मनुष्य को आराम की भी आवश्यकता होती है। वहाँ श्रम और आराम परस्पर-विरोधी होते हैं। मनुष्य श्रम से थकता है, तो उसके बाद आराम लेता है और आराम से थकता है—आराम की भी थकान होती है—तो उसके बाद फिर श्रम करने लगता है। लेकिन साहित्य की यह खूबी है कि उसमें श्रम के साथ-साथ शम चलता है। चौबीसों घंटे काम और चौबीसों घंटे आराम, यह है साहित्य की खूबी। साहित्य का चित्त पर कोई बोझ नहीं होता।

साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा

साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा, उसका सर्वोत्तम संकेत मुझे आकाश में दीखता है। आकाश-दर्शन की किसीको कभी थकान नहीं होती। खुला आसमान निरंतर आपकी आँख के सामने होता है, फिर भी आँख थक गयी, ऐसा कभी मालूम नहीं होता। आकाश के समान व्यापक, अविरोधी और गति देनेवाला होता है साहित्य। फिर भी ठोस भरा हुआ। यह भी आकाश का ही वर्णन है। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ आकाश न हो।

आकाश के जैसा ही व्यापक है। इसलिए आकाश ही साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा है।

साहित्य-सेवन की थकान नहीं आनी चाहिए। हम सुन्दर-मधुर संगीत सुनते हैं, तो 'अब बस!' नहीं कहते। जहाँ 'अब बस' आ गया, वहाँ समझना चाहिए कि वह चीज मनुष्य को थकान देनेवाली है। साहित्य के लिए भी जहाँ 'अब बस' आ गया, वहाँ समझना चाहिए कि साहित्य की शक्ति कम है, वह पूरी प्रकट नहीं हुई है।

बहुत-से लोगों को खुशबू बहुत अच्छी मालूम होती है और बदबू तकलीफ देती है, परन्तु मुझे खुशबू की भी तकलीफ होती है। कोई बू ही अगर न रहे, तो चित्त प्रसन्न रहता है। यह बात बहुतों को विचित्र-सी लगेगी; परन्तु जिस बगीचे में खूब सारे सुगन्धी पुष्प होते हैं, वहाँ पर कुछ क्लोरोफार्म जैसा असर होता है, चिन्तन अस्पष्ट हो जाता है, मन्द पड़ जाता है। दिमाग को थकान आती है। खुशबू के परमाणु नाक के अन्दर चले जाते हैं। उस जगह जो पर्दा होता है, वह दिमाग के साथ जुड़ा हुआ होता है। वहाँ पर वे बैठ जाते हैं, तो उनके स्पर्श से चिन्तन में एक प्रकार की मन्दता आ जाती है। अगर निर्गन्ध जगह हो, तो उसकी कोई थकान नहीं आती। रंग का भी यही हाल है। कुछ रंग कुछ लोगों को प्रिय होते हैं, लेकिन वे सदासर्वदा आपके सामने हों, तो भी थकान आती है। मगर आसमान के रंग की कभी थकान नहीं आती। इसलिए प्रभु को नीलवर्ण कहा जाता है। आसमान के नीलवर्ण की कभी थकान नहीं आती।

अनुकूल ही परिणाम

साहित्य की एक व्याख्या यह है कि उसका हमेशा अनुकूल ही परिणाम होता है। पर यह तो तब बन सकता है, जब प्रतिक्षण नया अर्थ

देने की क्षमता उसमें हो। जिसको दूध प्रिय है, उसे गाय प्रिय होती है, पर बिना दूध की गाय प्रिय नहीं होती। जिसे दूध प्रिय नहीं, उसे दूध देनेवाली गाय भी प्रिय नहीं होती! लेकिन ऐसी कोई कामधेनु हो, जो हर चीज देती हो, तो वह सबको सदासर्वदा प्रिय होती है। साहित्य ऐसी कामधेनु है। उसमें से अपनी इच्छा के अनुसार बहुत कुछ मिल जाता है।

'द' का मेरा अपना अर्थ !

उपनिषद् में 'द' की कहानी आती है। एक ही 'द' अक्षर का दम, दान और दया, ऐसा तीन तरह का अर्थ किया गया है। देव, मनुष्य और असुर, तीनों ने अपनी भूमिका के अनुसार बोध लिया। फिर मैंने सोचा, 'द' का मैं क्या अर्थ लूँ? यद्यपि मैं हिन्दी में बोल रहा हूँ, फिर भी मेरा मन मराठी है, इसलिए मैं मराठी में सोचता हूँ। तो मैंने सोचा कि विन्या के लिए 'द' का अर्थ क्या हो सकता है? असुरों के लिए उसका अर्थ दया होता है, देवों के लिए दमन होता है, तो विन्या के लिए 'द' याने 'दगड'! दगड से मतलब है, पत्थर! अब यह अर्थ न देवों को मालूम था, न असुरों को मालूम था, न उपनिषदकारों को ही। यह शुद्ध मराठी अर्थ है—'द' याने दगड। मैं दगड, पत्थर के समान बन जाऊँ। कोई पचास प्रहार करे, तो भी हर्ज नहीं। वह मूर्ति भी बन सकता है और ठोकर भी दे सकता है। इतना सारा 'द' का अर्थ मुझे मालूम था और जब यह अर्थ मुझे सूझा, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

स्वल्पाक्षर साहित्यिक

उत्तम साहित्यिक शब्द-स्वल्पाक्षर होते हैं। बहुत पानी डालकर फैलाये हुए नहीं होते। स्वल्पाक्षर होते हैं, याने थोड़े में अधिक सूचकता होती है और उनमें अनाक्रमणशीलता होती है, जिससे सहज ही बोध

मिले। व्यक्ति बोध लेना चाहे, तो ले सकता है और न लेना चाहे, तो नहीं भी ले सकता है। हर वक्त बोध लेना पड़े, तो मुश्किल होगी, इसलिए जब बोध लेना चाहे, तभी ले सकता है। समयानुकूल बोध मिले और बोध न भी मिले, तो भी जो प्रिय हो, वही अच्छा साहित्य है।

कवि की व्याख्या

एक दफा मैं बहुत बीमार था। कभी-कभी रामजी का नाम लेता था, कभी माँ का। अब मेरी माँ तो उस समय जिन्दा नहीं थीं। मैं मन में सोचने लगा कि उस माँ का मुझे क्या उपयोग है, जो जिन्दा नहीं है और मुझे कितनी भी तकलीफ क्यों न हो, उसे मिटाने के लिए नहीं आ सकती। फिर भी मैंने उस शब्द का उपयोग किया। माँ के मरने पर भी 'माँ' शब्द के उच्चारण से उसके पुत्र को बीमारी में प्रसन्नता होती है और उस शब्द से ही उसे अपना अभीष्ट प्राप्त हो जाता है। यह ऐसा शब्द है, जिसमें काव्य की सीमा होती है।

ऐसे शब्द हमारे देश में, हमारी भाषाओं में बहुत हैं। इसलिए यहाँ लोग अनिच्छा से भी कवि बनते हैं। वे शब्द ही ऐसे होते हैं, जो अनेकविध प्रेरणा देते हैं। इसलिए मनुष्य चाहे या न चाहे, वह कवि बन जाता है। मेरा खयाल है कि भारतीय भाषाओं में जितनी काव्य-शक्ति है, उसकी तुलना में दुनिया की दूसरी भाषाओं में कम है। हाँ, अरबी और लैटिन में है। संस्कृत में यह सामर्थ्य बहुत ज्यादा है, क्योंकि वह भाषा काफी प्राचीनकाल में निर्माण हुई है। इसलिए मनुष्य आज जिस तरह स्पष्ट रूप में सोचता है, वैसा उस समय नहीं सोचता था, अस्पष्ट रूप में सोचता था। जहाँ मनुष्य अस्पष्ट रूप में सोचता है, वहाँ बहुत ज्यादा सोचता है। जहाँ स्पष्ट सोचता है, वहाँ विशिष्टता आ जाती है और व्यापकता कम हो जाती है, जैसे स्वप्न में स्पष्टता नहीं होती। परंतु स्वप्न में जो विविधता होती है,

वह दुनिया में जो विविधता है, उससे भी ज्यादा होती है। सृष्टि में जो है, वह सब स्वप्न में है और सृष्टि में जो नहीं है, वह भी स्वप्न में है। स्वप्न के पेट में जाग्रति होती है। कवि की सारी सृष्टि स्वप्नमय होती है। उसका चिंतन सूक्ष्म, अव्यक्त और अस्पष्ट होता है।

व्यावहारिक भाषा में कवि याने मूर्ख। कुरान में भी मुहम्मद पैगंबर कई दफा बोले हैं, "मै कवि थोड़ा ही हूँ!" मेरी समझ में नहीं आता था कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा होगा। फिर एक जगह उनका एक वचन मिला कि "मैं कवि थोड़ा ही हूँ, जो बोले एक और करे एक!" कहा जाता है कि कुरान में बहुत काव्य है। अरबी साहित्य में उसे साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक माना जाता है। यह कोई केवल काल्पनिक गौरव की बात नहीं है। कुरान धार्मिक पुस्तक है, इसलिए ऐसा कहा होगा, सो बात नहीं। आधुनिक अरबी साहित्य को कुरान से सारी स्फूर्ति मिलती है। इतना होने पर भी उन्होंने कहा, "मै कवि थोड़ा ही हूँ, जो बोले एक और करे एक!" इसका एक मतलब यह कि मैं जो बोलूँगा, वह करूँगा; इसलिए मैं कवि नहीं हूँ। इसे उपालंभ मानने के बजाय हमने अधिक सुन्दर अर्थ निकाला है। उसका अर्थ यह कि "आप लोगों के सामने मैं एक स्पष्ट चिंतन रखनेवाला हूँ, जिससे कि आपको हिदायत मिले।"

कवि का चिंतन तो हमेशा अस्पष्ट होता है। उसके काव्य की गहराई को वह खुद नहीं जानता। उस पर परस्पर-विरोधी भाष्य किया जा सकता है। अगर किसी कवि ने अपनी कविता पर कोई भाष्य लिखा, तो मैं उससे बिल्कुल विरुद्ध भाष्य लिख सकता हूँ और संभव है कि लोग मेरा भाष्य कबूल करें और शायद वह खुद भी कबूल करे! कवि को जो सूझता है, वह उसके स्पष्ट चिंतन के बाहर की चीज है। कोई चीज उसे भास होती है। वह कुछ बनाता नहीं, कुछ रचना नहीं करता। सहज ही उसको चीज मिल जाती है, उसकी झाँकी मिल जाती है। कवि को क्रांतदर्शी

कहा है : "कवि क्रांतदर्शी" कवि दूर की देखता है, ऐसा कुछ लोग उसका अर्थ लगाते है। हाँ, वह भी हो सकता है। परंतु उसका एक अर्थ यह भी है कि कवि बहुत ही अस्पष्ट देखता है। जो स्पष्ट वस्तु है, उसे तो हर कोई देखता है, पशु भी देखता है। पशु का मतलब यही है कि जो देखता है, वह पशु है—'पश्यति इति पशु'। जो देखता है, बिना देखे जिसे भरोसा नहीं होता, चिंतन से कोई बात नहीं मानता, कहता है, सबूत दिखाओ, वे पशु होते है। वह पशुत्व है। कवि में यह पशुत्व नहीं होता। इसलिए उसकी वाणी मे विविध दर्शन होता है।

अभी बेनीपुरीजी ने बताया कि हम भूदान-यज्ञ मे मदद करना चाहते है। कोई साहित्यिक वास्तव मे मदद करेगा, तो मालूम ही नही होगा। अगर फलाने उपन्यास मे विनोबा को मदद की गयी है, ऐसा मालूम हो गया, तो वह असफल है। जिसमे पता ही न लगे, वही उत्तम मदद है। जैसे ईश्वर की स्थिति है। वह मदद देता है, तो उसका भान ही नही होता। वह बिना हाथ के देगा, बिना आँख के देखेगा, बिना कान के सुनेगा, बिना लेखनी के लिखेगा। सर्वोत्तम कवि वह हो सकता है, जिसने कुछ भी न लिखा हो! जिसने कुछ रद्दी लिखा हो, वह कवि ही नहीं है। महाकवि वह हो सकता है, जिसके हृदय मे इतना काव्य भर गया है कि वह प्रकट ही नहीं कर सकता।

'साहित्य' प्रकाशित नहीं होता है

इसका अर्थ यह नहीं कि जिसने कुछ भी नहीं लिखा, वह कवि होता है। एक महाकवि ऐसा हो सकता है, जिसकी काव्यशक्ति बहुत गहरी होने के कारण प्रकाश मे नहीं आ सकती, वाणी मे और प्रकाशन मे नहीं आ सकती। जब हम इस दृष्टि से देखते है, तो लगता है कि साहित्य का एक लक्षण यह है कि साहित्य प्रकाशित नहीं हो सकता। आजकल तो हर कोई

साहित्य को प्रकाशित करने की बात सोचता है, परतु यह प्रकाशन की बात नहीं है। साहित्य हमेशा अप्रकाशित होता है।

सहचिंतन कीजिये

इन दिनों तो साहित्यिकों को इनाम भी दिया जाता है। हमको भी इनाम मिला है। हमको याने हमारे प्रकाशक को ! इन दिनों किसके सिर पर इनाम आकर गिरेगा, कोई भरोसा नहीं। इसलिए जब कभी हम साहित्यिकों की मदद के लिए अपील करते हैं, उनके पास पहुँचते हैं, तो हम इतना ही चाहते है कि आप हमारे साथ सहचिंतन कीजिये। हम जैसा चिंतन करते हैं, उसमें आप शरीक हो जाइये, यही हमारी मॉग है। मानव के लिए यह बात सहज है, उसका यह स्वभाव है।

हम आम खाते है, तो पास बैठे हुए मनुष्य को दिये बगैर नहीं खा सकते। इतना ही नहीं, पडोसी को बुलाकर खिलाते हैं। जो दूसरे को बिना बुलाये खायेगा, वह रसिक नहीं है। जो अपने रस में दूसरे को शरीक करता है, वही 'रसिक' है। इसलिए जब हम साहित्यिकों को बुलाते हैं, तो कहते हैं कि हम अकेले ही रस लेते जायॅ, यह अच्छा नहीं। आप रसिक हैं, इसलिए आप भी शरीक हो जाइये। शरीक होने पर आप चाहे काव्य लिखिये या न लिखिये, हमें बहुत मदद होगी।

मेरी तो मान्यता है कि जिन्होंने उत्तम काव्य लिखे, वे उतने उत्तम कवि नहीं थे, जितने कि वे हैं, जिन्होंने कुछ नहीं लिखा। जो महापुरुष दुनिया को मालूम हैं, वे उतने बडे नहीं हैं। उनसे भी बडे वे महापुरुष हैं, जो दुनिया को मालूम नहीं हैं। "अव्यक्तलिंगा अव्यक्ताचारा।" ज्ञानी का आचार अव्यक्त होता है, वह प्रकट नहीं होता। मालूम ही नहीं होता कि वह ज्ञानी है। आप हमारे अनुभव में शरीक हो जाइये, इतनी ही हमारी मांग है। शरीक हो जाने पर उसका प्रकाशन हो या न हो, शब्दों

में हो या कृति मे हो, एक प्रकार के शब्द मे हो या दूसरे प्रकार क शब्द में हो, एक प्रकार की कृति मे हो या दूसरे प्रकार की कृति मे हो, इतने सारे प्रकार के प्रकाशन हो या अप्रकाशन भी हो, तो उन सबसे हमें मदद मिलेगी, अप्रकाशन से ज्यादा मदद मिलेगी। हम इतना ही चाहते है कि आप हमारे साथ, हमारे अनुभव मे समभोगी, रसभोगी हो जाइये। फिर वह शब्द में या कृति मे प्रकट न हो सका, तो हमे सबसे ज्यादा मदद मिलेगी। वह चीज आपके सकल्प मे रहेगी और आप हमारे अत्यत निकट रहेगे।

आवाहन का भार नहीं

इसलिए जब हम साहित्यिको से आवाहन करते हैं, तो साहित्यिको पर हमारे आवाहन का कोई भार नहीं है। अगर किसीको महसूस हुआ कि विनोबा ने हम पर बडी भारी जिम्मेदारी डाली है, तो वह क्या साहित्य लिखेगा ? साहित्यिक बोझ नहा उठा सकता और हम किसी पर बोझ नहीं डालेंगे। हम इतना ही कह रहे हैं कि हमारे साथ शरीक होने मे, उस रस की अनुभूति मे आनद है। हम चाहते है कि आपको भी यह आनन्द प्राप्त हो ! इसीका नाम है, साहित्यिको का आवाहन और साहित्यिको की मदद।

बलरामपुर में बगाल के साहित्यिक इकट्ठे हुए थे। कभी कभी मेरी समाधि लग जाती है। उस समय ऐसी योजना की गयी थी कि हमारे सामने दीपक रखे गये थे—पॉच, सात, नौ, इस तरह से। मै उनकी ओर देख रहा था। मे मन मे सोच रहा था कि पॉच दीपक है, तो पचप्राण हो गये। सात है, तो सप्तछिद्र। नौ है, तो नवद्वार। ग्यारह है, तो एकादश इन्द्रियॉ। इस तरह मै कल्पना कर रहा था, तो कल्पना-तरग मे मेरी समाधि लग गयी। उस दिन के हमारे भाषण का साहित्यिको पर बहुत

असर पड़ा, वे तन्मय हो गये, ऐसा हमने सुना। उन्होंने कहा कि आपके इस आन्दोलन से हमें नवजीवन मिला है। बंगाल के साहित्य की देशभर में प्रतिष्ठा है, परन्तु बीच में कुछ मंदता आ गयी थी। अब फिर से जोर आयेगा। हमने सुना कि ताराशंकर बंद्योपाध्याय इस विषय पर एक उपन्यास भी लिख रहे हैं। लेकिन हम उसकी ताक में नहीं हैं। हम किसीसे कुछ आशा नहीं रखते। एक अव्यक्त असर हो जाता है।

साहित्य वीणा की तरह है

साहित्य के लिए हमारी इतनी सूक्ष्म भावना है। साहित्य एक वीणा की तरह है। कुछ लोग समझते हैं कि वीणा बजानेवाला जोर से बजाये, तभी श्रोताओं पर असर होता है। परंतु जो उत्तम कलाविद् होते हैं, वे बिल्कुल बारीक आवाज से बजाते हैं, जैसे हृदय-वीणा पर बजा रहे हों। एक दफा मैं ऐसा ही वीणा-वादन सुन रहा था। धीमी-शान्त आवाज, जैसे ओंकार की ध्वनि सुनाई दे रही थी। जिनमें रस-ग्रहण नहीं था, वे कहते थे कि यह कुछ बजा भी रहा है या नहीं! हमें तो कुछ सुनाई नहीं दे रहा है। परंतु मुझे जरा संगीत का कान है, इसलिए मुझे आनंद आ रहा था। कुछ लोग तो समझते हैं कि बजानेवाला पसीना-पसीना हो जाय, तभी उसने अच्छा बजाया! लेकिन वह तो इस तरह बजा रहा था कि जरा थोड़ी-सी तार छेड़ी, फिर शान्त रहा। फिर एक तार छेड़ी।

हृदय-सम्मिलन की माँग

एक दफा एक गुरु के पास एक शिष्य पहुँचा। शिष्य ने कहा, "आत्मा क्या है, हम जानना चाहते हैं।" गुरु शांत रहे। शिष्य ने दुबारा पूछा, फिर भी गुरु शान्त ही रहे। इस तरह तीन बार पूछा गया और तीनों बार गुरु शान्त ही रहे। चौथी बार शिष्य ने कहा, "हमने तीन-तीन बार पूछा और आप उत्तर नहीं देते हैं!" गुरु ने कहा, "हमने तीन-तीन

दफा उत्तर दिया और ऐसे उत्तम तरीके से दिया कि इससे बेहतर तरीका हो नहीं सकता, तो भी तू नहीं समझा। जो न बोलने से भी नहीं समझता, वह बोलने से कैसे समझेगा ?" उसी तरह साहित्यिक से भी हम कहेंगे कि "अरे कम्बख्त ! न लिखने पर भी तू नहीं समझ सकता है, तो लिखने पर कैसे समझेगा ?" इसलिए हमने जो साहित्यिकों से मदद माँगी है, वह केवल सहानुभूति माँगी है, हृदय की सहानुभूति माँगी है। इसलिए उसका बोझ या भार नहीं महसूस होना चाहिए। फिर इनाम-विनाम देने की जिम्मेदारी हम पर मत डालना। हम यही चाहते हैं कि सहज भाव से हृदय के साथ हृदय जोड़ दिया जाय।

पुरी
२६-३-'५५

साहित्य कुछ विचित्र स्वभाववाली वस्तु है। उसको पोषण देते हैं, तो सूख जाता है, और पोषण नहीं देते हैं, तो भी सूख जाता है। बीच की जो हालत है, जिसमें पोषण दिया भी जाता है और नहीं भी दिया जाता, ऐसी हालत में ही वे जिंदा रहेंगे।

साहित्यिकों की दरिद्रता

कुछ बड़े साहित्यिक गरीब थे। तमिलनाडु के भारती बहुत गरीब थे। पर वे दीन नहीं थे। परमेश्वर दरिद्रता देता है, तो हमारी कसौटी के लिए ही। अगर हम दीन नहीं बनते हैं, तो उसकी परीक्षा में पास होते हैं। वैसे ही किसीको परमेश्वर श्रीमान् बनाता है, तो भी परीक्षा लेने के लिए। गरीबी और वैभव, दोनों ईश्वर की देनें हैं और ईश्वर हमें दारिद्र्य या वैभव देता है, तो हमारी आजमाइश के लिए ही।

दरबारी कवियों का साहित्य

हम मानते हैं कि जिसे हम सरकार या राजदरबार कहते हैं, उसने जिनको पोषण दिया, उनसे जो भी उत्तम-से-उत्तम साहित्य मिला है, वह भी दूसरे दर्जे का है। वाल्मीकि या तुलसीदास दरबारी कवि नहीं हो सकते थे। दरबारी कवियों का उत्तम नमूना है, कालिदास। लेकिन कालिदास एक छोटा-सा उद्यान है। अच्छा बनाया हुआ, सुन्दर, परन्तु उद्यान है। और वाल्मीकि तो जंगल है। वन और उपवन में जो फर्क होता है, वह उन दोनों में था। फिर भी कालिदास स्वतन्त्र वृत्ति का कवि था।

कवि आश्रित नहीं रहता

उन दिनों कवियों को राजाश्रय दिया जाता था और कवियों का काफी आदर होता था। पर कवि आश्रित नहीं माना जाता था, बल्कि आश्रय देनेवाला ही मानता था कि कवि ने हमको आश्रय दिया है। कवि हमारे पास रहता है, इसीका वे लोग उपकार मानते थे।

कुछ लोगों का तो कहना है कि राम का यश इतना जो फैला, उसका कारण है, उनके पास एक कवि था। वाल्मीकि ने उनका यश फैलाया। वैसे रावण भी तो बडा था; लेकिन उसका यश फैलानेवाला कोई कवि उसे नहीं मिला। इसलिए कवि राजाओं के पास आश्रय के लिए नहीं जा सकते।

जनता के साथ एकरूपता

मै मानता हूँ कि कवि को क्लर्की जैसी नौकरी का आधार मिले, तो वह आधार उसे तोडनेवाला ही होगा। कवि के लिए क्लर्क बनना तकलीफदेह है, परन्तु उसके लिए किसान बनना तकलीफदेह नहीं है। कुदरत के साथ एकरूप होनेवाला धधा कवि को चाहिए। बडे-बडे जो कवि हुए, वे किसान थे, बढई थे। वे छोटे-छोटे उद्योग करते थे, जिनमे थोडी आमदनी तो हो जाती थी, लेकिन नाहक दिमाग को तकलीफ नही होती थी। ऐसे कवियो का ही साहित्य फलता है, फूलता है। मै मानता हूँ कि कवि को दस घटे श्रम करना पडे, तो वह अन्य काम नहीं कर सकता, लेकिन दस घटे तो वह व्यक्ति श्रम करेगा, जो पैसा चाहता है। कवि लोग चार घटे खेती में काम करें, तो उनके लिए वह पर्याप्त है। समाज जितना खेती के साथ एकरूप होगा, उतना काव्य बढेगा। कवि की संख्या बढ़े या न बढे, परन्तु काव्य बढ़ेगा।

कबीर कबीर कैसे बना ?

कबीर बुनकर न होता, तो कबीर नहीं बनता। उस जमाने में छापाखाना नहीं था। लेकिन उसके बिना ही उसके काव्य का प्रचार हुआ, क्योंकि वह जनता के उद्योग के साथ एकरूप था, इसलिए जनता के सुख-दुःख को वह समझता था। जनता के हृदय के साथ भी वह एकरूप था। इसलिए मैं मानता हूँ कि साहित्यिक या तो किसान हो सकता है या कोई उद्योग कर सकता है या फकीर भी हो सकता है, जो कि केवल जनता पर निर्भर रहे। ऐसे फकीरों को तो खाना मिले, तो भी स्फूर्ति होती है, खाना न मिले, तो भी स्फूर्ति होती है। खाना न मिलने पर जो दुःख या करुणा हृदय में पैदा होती है, वह भी काव्य की प्रेरक बनती है।

कवि का आदर्श

इस तरह साहित्यिक को पूर्ण विरक्त या सृष्टि का उपासक भक्त, इन दोनों में से एक बनना चाहिए। जो बीच के लोग हैं, याने जो पूर्ण विरक्त भी नहीं हैं और सृष्टि के उपासक भी नहीं हैं, उनको कुछ आश्रय चाहिए। लेकिन ऐसा आश्रय चाहिए, जिससे कि उन्हें स्फूर्ति के लिए अवकाश मिले।

कोई पीड़ा दे रहा हो, तो हम सिर्फ तमाशा देखते रहते हैं। सारे यात्री सिर्फ सहानुभूति दिखाते हैं। सहानुभूति है, पर करुणा नहीं। करुणा में करने की बात है, क्योंकि 'कृ' धातु से वह शब्द बना है। तो, आज करुणा कहीं नहीं दीख रही है।

संपत्ति-दान-यज्ञ द्वारा एक हल

इसलिए हमारा जो संपत्ति-दान-यज्ञ है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। कम्युनिस्ट लोग टीका करते हैं कि "विनोबाजी को न जमीन चाहिए, न संपत्ति। उन्हें तो सिर्फ कागज चाहिए।" हम संपत्ति की उतनी कीमत नहीं करते, जितनी इस कागज की करते हैं। इस कागज में हम उस दान देनेवाले से लिखा लेंगे कि जब तक हम जीवित रहते हैं, तब तक हम अपने कुटुम्ब पर जितना खर्च करते हैं, उसका एक हिस्सा दान देंगे। हमें आधा ही खाना मिला, तो उसका भी एक हिस्सा देंगे। आधे पेट में भी लोग हिस्सा दें, यह हम चाहते हैं। उस आदमी को हम सिर्फ निर्देश देंगे कि पैसा कैसे खर्च हो। पैसा उसीके पास रहेगा।

'आनरेरियम' दिया जाय

हम मानते हैं कि सारा पैसा हमारा है और वह हर घर में बँटा हुआ है। कोई छठा नहीं, आठवाँ या दसवाँ हिस्सा दे, तो भी हर्ज नहीं। हम चाहते यह हैं कि घर में एक मनुष्य और है, ऐसा समझकर उसके वास्ते उतना खर्च करने का कर्तव्य माने जाने की बात चलनी चाहिए। अगर यह बात चली, तो जहाँ भी ऐसा कोई अच्छा मनुष्य हो, उसके लिए दस-पाँच व्यक्ति एक-एक हिस्सा देंगे। उसका रूप 'आनरेरियम' का होगा। याने जिसे दिया जायगा, सम्मानपूर्वक दिया जायगा। ऐसी हालत में वह लेनेवाला भी गलत खर्च नहीं करेगा, न ही ज्यादा लेगा। इससे उसका

भी जीवन पवित्र बनेगा और देनेवाले का भी । आदर, कर्तव्य इत्यादि पवित्र भावनाओं के साथ ही वे दान देंगे ।

चार आवश्यक बातें

इसलिए साहित्यिकों को एक तो तुलसीदास, वाल्मीकि आदि की कोटि का विरक्त पुरुष बनना चाहिए, तो साहित्य फैलेगा । दूसरी बात यह है कि आपको किसान बनना चाहिए या वैसे ही छोटे-छोटे उद्योग करने चाहिए । तीसरी बात यह है कि सरकार की तरफ से साहित्यिकों को कुछ मिलना चाहिए, लेकिन इसमें अभी देर है । चौथी बात है, संपत्ति-दान । जहाँ पंद्रह हजार कुटुम्ब हों, वहाँ सब अपना पंद्रहवां हिस्सा दें, तो एक हजार कुटुम्बों का पोषण होगा । समाज की सेवा करनेवाले एक हजार कवियों और वैज्ञानिकों के कुटुम्बों को अकेला गया जैसा शहर भी पोषण दे सकता है । हमें इसी प्रवृत्ति को बढ़ाना है ।

स्वाभाविक पोषण आवश्यक

कवि को ज्यादा पोषण न हो और कम भी न हो । उसे कृत्रिम पोषण नहीं मिलना चाहिए । जैसे माँ का दूध बच्चे को सहज ही मिल जाता है, वैसा पोषण कवि को मिले । लेकिन अगर माँ बच्चे को अपना गोश्त खिलायेगी, तो बच्चा वह नहीं खा सकेगा । इसलिए कवि को पराश्रित नहीं होना चाहिए । इससे वह सूखेगा । उसको उतना ही मिलना चाहिए, जिसमें उसका शरीर, मन और प्राण कायम रहें । पुराने जमाने में भिक्षा चलती थी । लेकिन मुझे वह पसंद नहीं है, क्योंकि उसमें देनेवाला श्रद्धा से नहीं देता । इस जमाने में तो भिक्षा देनेवाला टालने की वृत्ति से ही देता है, और गालियाँ देकर मुट्ठीभर अनाज मात्र दे देता है । इसलिए भिक्षा नहीं चाहिए । इसलिए संपत्ति-दान चलाइये । इसमें बड़े-छोटे, सब हाथ बँटायें । जो कोई खाता है, उसे उसका एक हिस्सा देना चाहिए । उस हिस्से में से फिर ऐसे समाज-सेवकों का पोषण सुविधापूर्वक हो सकता है । • • •

दग्ध वाङ्मय और विदग्ध वाङ्मय

ईश्वर और उसकी प्रकृति, दोनों ही अनादि हैं। जब से ईश्वर है तभी से प्रकृति भी है। प्रकृति का होना ही ईश्वर का ईश्वरत्व है। प्रकृति में से अनेकविध सृष्टि उत्पन्न होती है और उसीमें वह विलीन हो जाती है। ऐसी अनेक सृष्टियाँ आती हैं और जाती हैं; प्रकृति कायम रहती है। सृष्टि के बाद मनुष्य आता है। वह सृष्टि का ही एक भाग होता है, और स्रष्टा का एक अंश। सृष्टि से उसकी देह का धारण होता है और सृष्टि से उसके हृदय का पोषण। मनुष्य के लिए अन्न का कोठार और बोध का खजाना, ऐसे दुहरे रूप में सृष्टि सजी है।

अमूल्य निधि

सृष्टि और मानव के बीच पर्दा नहीं है। मानव सृष्टि में से सीधे बोध ग्रहण कर सकता है और वह आज तक उस तरह करता आया है। यही बोध वाणी में उतरकर वाङ्मय, और सरस्वती की कृपा पाकर सारस्वत बनता है। सरस्वती के विशेष कृपापात्र महापुरुष औरों के लाभ के लिए ग्रंथ-रूप में ऐसा सारस्वत संचित कर रखते हैं। यह संचय मानव की अमूल्य निधि है।

हितैषी धर्मशास्त्र

मानव अपने अनुभव का लाभ अपने बान्धवों को दे, यह दया का ही कार्य है। लेकिन उसकी भी मर्यादाएँ हैं। तू अमुक कर, और अमुक मत कर, इस तरह सीधा-संगीन उपदेश एक तरह का आक्रमण हो जाता है। ऐसा आक्रमण सहन हो सकता है, मीठा भी लग सकता है,

अगर वह माता-पिता या गुरु की तरफ से हो। तीनों नातों से बोध कर सकनेवाले हितैषी धर्मशास्त्र इस तरह के प्रत्यक्ष और निश्चित, विध्यर्थ और आज्ञार्थ, उपदेश देते रहते हैं।

मध्यस्थ लेखन-शैली

लेकिन औरों को वैसा अधिकार नहीं होता इसलिए वाङ्मय की मीमांसा करनेवाले साहित्यकार, बोध की मार करनेवाले साहित्य को, यद्यपि वह बोध समुचित होता है, गौण समझते हैं और सूचक साहित्य को प्रथम स्थान देते हैं। साहित्यकारों की यह दृष्टि एक अहिंसक सूक्ष्म-दृष्टि है, ऐसा मैं समझता हूँ। जैसे प्रत्यक्ष रेखाबद्ध और लीक-लीक बोध से दूसरे पर आक्रमण होता है और इसलिए इसमें एक प्रकार की हिंसा हुआ चाहती है, वैसे ही सूचक बोध भी अगर अति गूढ़ में हो गया, तो मनुष्य की बुद्धि को सतायेगा और उसमें एक दूसरे प्रकार की हिंसा की संभावना होगी। इसलिए अहिंसा में रमे हुए सरस्वती-पुत्रों की लेखन-शैली, सुझाने किन्तु न चुभानेवाली, मध्यस्थ होती है। इस तरह उभय मर्यादाओं को सँभालकर जो वाङ्मय अवतरित होता है, वह है विदग्ध वाङ्मय। ज्ञानदेव के कथनानुसार जैसे पानी आँख की पुतली को भी कष्ट नहीं देता और चट्टान को भी चीर डालता है, वैसा ही यथार्थ और मृदु मित और रसाल है विदग्ध वाङ्मय का विशुद्ध स्वरूप!

साहित्य, स्वरूपमात्र के कारण विदग्ध होगा ही, ऐसा नहीं है। काव्य, नाटक, कथा आदि का कितना ही साहित्य आज ऐसा बताया जा सकता है कि अगर करना ही पड़े, तो उसका शुमार दग्ध-वाङ्मय में ही करना होगा। दग्ध कौन और विदग्ध कौन, इसकी कसौटी और कोई न करे, तो भी जमाना तो करता ही रहता है। मिसाल के तौर पर रामायण और महाभारत दोनों उत्तम उदाहरण हैं विदग्ध वाङ्मय के—जमाने की कसौटी पर कसे हुए। इसके खिलाफ बहुत सारे पुराण यद्यपि कथा-शैली से भरे हुए हैं, आज दग्ध हो चुके हैं। इस बात से लाभ उठाकर कि काव्य, कथा आदि साहित्य लोगों को रोचक हो सकता है, जो ढेर-सा साहित्य अनेक भाषाओं में लिखा जा रहा है, सारा दग्ध वाङ्मय है; आज नहीं तो कल जल जानेवाला है। जल जाने के पहले अनेक लोगों के हृदय भी वह जलाये डाल रहा है, यह दुख की बात है।

सत्यं प्रियहितं च यत्

कहानियाँ छोटे बच्चों को भी अच्छी लगती हैं। इसकी वजह क्या है? माँ की वाणी छोटे बच्चों को अच्छी लगती है, इसकी भी वजह क्या है? जो वजह इसकी है, वही उसकी है। प्रेम से सुझाना, यही दोनों की वजह है—जैसे गीता ने कहा है: "**अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।**" लेकिन माँ तो प्रत्यक्ष बोध भी कर सकती है और वह भी बच्चे को रुचता है। औरों का प्रत्यक्ष बोध नहीं रुचता, बल्कि सूचन भी हमेशा रुचता ही है, ऐसा नहीं है। व्याजोक्ति, व्यंग्योक्ति, वक्रोक्ति आदि सूचन सीधे आक्रमण से भी अधिक अप्रिय होते हैं। सारांश, सूचन विदग्ध ही होगा, ऐसा नहीं, और प्रत्यक्ष-बोध भी अगर प्रेमाधिकार-सम्पन्न हो, तो विदग्ध हो सकता है। इसलिए गीता के समान प्रत्यक्ष उपदेश भी विदग्ध वाङ्मय है। इतना ही नहीं, विदग्ध-वाङ्मय के आदर्श साबित हो सकते हैं। प्रेम से रिझाकर

हितोपदेश करने के जितने प्रकार हैं, फिर वे प्रत्यक्ष उपदेश के हों, चाहे परोक्ष सूचन के, विवेचनरूप हों अथवा कथा-रूप, विदग्ध-वाङ्मय हैं।

तीन उत्तम उदाहरण

आदर्श विदग्ध-वाङ्मय का एक बाह्य लक्षण ज्ञानदेव ने 'आंगें साने परिणामें थोर' बताया है। "रूप में छोटा, फल में महान्।" ऊपर उद्धृत किये वचन में 'मित' शब्द आया है। हमारी माँ ने बचपन में हमें एक सूत्र बता रखा था, "मित में मिठास।" मुझसे एक भाई ने पूछा, "तुम्हारी रुचि की तीन सर्वोत्तम पुस्तकें कौनसी हैं ?" मैंने कहा, भगवद्-गीता, ईसप की कहानियाँ और यूक्लिड की भूमिति। सुननेवाले के लिए यह उत्तर बिल्कुल अनपेक्षित था। लेकिन मैं इन तीनों को विदग्ध-वाङ्मय के उत्तम उदाहरण समझता हूँ। गीता का बचाव मैंने ऊपर किया ही है। ईसप की कहानियों के बचाव की जरूरत नहीं है। यूक्लिड का रेखागणित विदग्ध-वाङ्मय कैसे है, यह बताने की जरूरत है। यूक्लिड साक्षात् उपदेश नहीं करता। थोड़े में प्रमेय समझाकर अलग हो जाता है। यह सब विदग्ध लक्षण है।*

कामा (भरतपुर)
जून, '४९

सच्चा साहित्य-रस

वास्तव में किसी भी मानव के लिए, सिवा ईश्वर के लिए बेचैनी के, और कोई बेचैनी किसी भी समय रही ही नहीं है। सब जीवों की एक ही उत्कटता है, एक ही दौड़-धूप है और एक ही अंतिम गति है। बस, इतना ही है कि ईश्वर के नाम से सब लोग ईश्वर को नहीं चीह्नते। कोई उसे संतति नाम देते हैं, कोई संपत्ति नाम देते हैं, कोई सत्कीर्ति कहते हैं, कोई सत्ता कहते हैं, कोई ईश्वर भी कहते है। नाम चाहे जो हों, उत्कटता के स्वरूप में कोई फर्क नही पड़ता। लेकिन, तृप्ति में अपार फर्क पड़ जाता है।

मेवे के हकदार

जाने-अनजाने सभी ईश्वर की ओर जा रहे है। समझ-बूझकर उस दिशा की ओर जानेवाले ज्ञानी माने गये; बिना समझे जानेवाले अज्ञानी समझे गये। जिन्होने सीधी राह ली, वे साधु माने गये, जिन्होने टेढी राह ली, वे दुर्जन माने गये। उनकी उत्कटता में तृप्ति के फल लगते है, इनकी पिपासा में वेदनाओं के कॉटे लगते है। और मुझे लगता है, अधिक तपस्वी ये ही हैं, जो पहले भी ताप सहें और अंत में भी। इनकी तपस्या की बराबरी वे कैसे कर सकते हैं, जिन्होंने प्रारंभ में भले ही अगणित यातनाएँ सहीं, किन्तु अंत में तो मेवा ही चखा !

काव्य की शक्ति—उत्कटता

उत्कटता काव्य की शक्ति है। 'उत्कटता के अनेक प्रकार होते हैं, इसलिए काव्य के भी अनेक प्रकार हुए। परंतु उत्कटता का स्वरूप सर्वत्र एक ही होता है। इसलिए उत्कटतापूर्ण काव्य का रसास्वादन, चाहे वह

काव्य किसी प्रकार का क्यों न हो, रसिक अवश्य कर सकता है, फिर उसकी काव्य-रुचि किसी भी प्रकार की क्यों न हो। कवि की इच्छा जो रहे, रसिक अपनी रुचि का अर्थ उस काव्य में से निकाल लेता है। भक्ति-रस के काव्य में से शृंगारिक को शृंगार मिल सकता है और *शृंगार-रस* के काव्य में से भक्त भगवान् की भक्ति पा सकता है। वीर-काव्य में विरक्त को वैराग्य मिल जाता है और वैराग्यपरक काव्य में क्षात्र-वृत्ति वीर रस खोज लेती है। इसलिए मैंने मान लिया है कि काव्य का स्वरूप लेखक की मर्जी पर नहीं, रसिक की मर्जी पर ही निर्भर रहता है।

अभाव में से भाव कैसे ?

परंतु लिखनेवाले के हाथ में एक बात रहती है। नीरस कविताएँ लिखकर वह पाठकों को 'वि-रस' जरूर कर सकता है। यह नहीं सध सकता कि कवि तो नीरस लिखता रहे और पाठक उसे सरस माने। उसके शृंगारिक वर्णन को वह भक्तिमय समझ सकता है, लेकिन उसके नीरस वर्णन को वह सरस नहीं मान सकता। इसलिए काव्य का मर्म जाननेवालों ने रस को काव्य की आत्मा माना है। और मुझे लगता है, उनका वह कथन सही है।

जीवन-सार

लेकिन आखिर रस किसे कहते हैं? शब्दों की और अर्थ की ठीक-ठीक रचना या सजावट को तो रस कह ही नहीं सकते। वह चीज तो बनावटी रंगीन केले के समान होगी। सोन-केले का स्वाद उसमें नहीं आवेगा। रस याने लगन की सचाई। इसलिए मै कहा करता हूँ कि सच्ची लगन चाहिए, फिर वह वाह्य-विषय-वासना की ही क्यों न हो, मुझे मान्य होगी। लेकिन ईश्वर के नाम की भी खोटी लगन नहीं चलेगी। पारस लोहे का सोना कर सकता है, पीतल का नहीं कर सकता। तुम्हारी हीन लगन का रूपान्तर मैं उच्च लगन में कर सकता हूँ, लेकिन तुम्हारे खोटे का खरा करने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। तुकाराम जब कहता है कि, "न ये नेत्रीं जळ। नाहीं अंतरी तळमळ। तो हे चावटी चे बोल"—अर्थात् अगर "नैनन में नीर नहीं, अंतर में लगन नहीं, तो ये सारे बोल व्यर्थ हैं।" तब वह भी यही कहना चाहता है। सत्य ही जीवन-सार है और वही साहित्य-रस है।

पापी भी निष्ठावान् चाहिए

लोग पूछते हैं, "क्या यह जरूरी है कि कवि का जीवन पुण्यमय ही हो?" कोई आग्रहपूर्वक जवाब देते है—"अवश्य।" दूसरे कहते हैं—"वैसी खास जरूरत नहीं है।" मेरी निगाह में कवि का जीवन पुण्यमय जरूर होना चाहिए, लेकिन मैं दूसरे पक्ष का भी समर्थन करने के लिए तैयार हूँ। मेरा कहना है, कवि पापी ही क्यों न हो, पर वह सच्चा पापी होना चाहिए। अच्छा मनःपूर्वक पाप करनेवाला चाहिए। बीच-बीच में पुण्य का आचरण लेनेवाला, पाप का स्वांग करनेवाला नहीं चलेगा। निष्ठा-वान् पापी चाहिए। उस हालत में वह चाहे नरक में जाय, लेकिन उसके काव्य से मैं मोक्ष पा सकता हूँ।

सत्य का प्रयोग

काव्य सत्य का प्रयोग है। जिसके जीवन में जितना सत्य उतरा होगा, उतना ही काव्य उसमें प्रकट होगा। फिर वह उस काव्य को शब्दों में प्रकट करे या न करे।*

परंधाम (पवनार)
१७-८-'४९

साहित्यिकों का अपना एक कार्य है। परन्तु जैसे बढ़ई, बुनकर आदि का एक पेशा होता है और एक जाति होती है, वैसे साहित्यिकों की न कोई जाति होती है, न पेशा। बल्कि यह सारी ईश-सृष्टि जितनी विविध है, उतनी ही साहित्य की रचना विविध होती है। इसीलिए साहित्यिकों की अपनी स्वतन्त्र महिमा होती है। हम उसका समावेश 'नाम महिमा' में कर लेते हैं।

कृति में 'राम' हो

एक कहानी है कि 'शत-कोटि रामायण' तीन हिस्सों में बँट गयी। आखिर में एक श्लोक रह गया, जो ३२ अक्षरों का था। उसमें से भी १० १० अक्षर बँट गये और २ अक्षर बचे। उनका तीन में समान विभाजन नहीं हो सकता था, इसलिए समान विभाजन करनेवाले भगवान् शंकर ने कहा कि हम विभाजन करनेवाले हैं, इसलिए उसकी मजदूरी के तौर पर दो अक्षर लेंगे। उन्होंने दो अक्षर लिये, 'रा' 'म'। उन दो अक्षरों में रामायण आ जाती है। यही साहित्यिकों की कृति का सार है। सीताजी ने हनुमान को मोती की माला इनाम दी थी। हनुमान ने एक-एक मोती चबाना शुरू किया और चबाकर देखा कि उसमें कुछ रस नहीं है, तो फेंक दिया। जब सीताजी ने पूछा कि तूने यह क्या किया? तो हनुमान ने कहा कि मैंने एक-एक मोती चबाकर देखा कि उसमें राम है या नहीं और जब नहीं दीखे, तो फेंक दिया। वह हर चीज में राम ही देखता था। उसी तरह साहित्यिकों की हर कृति में राम है या नहीं, यह देखना होता है। अगर राम नहीं है, तो वह कृति दुनिया में नहीं टिकेगी, दुनिया पर स्थायी असर नह

डालेगी। वह लुप्त हो जायगी। इसलिए किसी साहित्यिक की कृति का नाप-तौल दुनिया के सामने उसके आकार से नहीं किया जायगा। किसने कितना लिखा, इस पर से उसकी कीमत नहीं नापी जायगी, बल्कि उसने जीवन को कितना रस दिया, उस पर से उसकी परीक्षा-पहचान होगी।

हम समझते है कि जिस जमाने मे हम है, उस जमाने का जीवन-रस त्याग में ही प्रकट हो सकता है। जिस साहित्यिक ने वह त्याग-रस जितना चखा हो, उसके जीवन में वह जितना उतरा हो, उतना उसका असर दुनिया पर होगा।

हम साहित्यिक नहीं है, फिर भी उनकी महिमा को पहचानते है। हमने आशा रखी है कि हमने जो काम उठाया है, उसमे साहित्यिक भी अपनी शक्ति का योग देंगे। हर मनुष्य की अपनी शक्ति होती है, परन्तु जब वह भगवान् को समर्पित होती है, तब उसमें पूर्णता आती है। मनुष्य स्वयं अपूर्ण है, नदी स्वयं अपूर्ण है, परन्तु जब वह समुद्र में लीन हो जाती है, तब उसे पूर्णता प्राप्त होती है। हम अपनी शक्ति के द्वारा भगवान् की सेवा, समाज-सेवा करते है। पर जब वह भगवान् को समर्पण होती है, तब उसमें पूर्णता आती है। फिर चाहे उसमें शृंगार रस हो, करुण रस हो या हास्य रस हो।

नवीन-नवीन रस ही नव-रस

कवियों ने नव-रसों की गिनती की है, परन्तु हमें लगता है, जो नवीन-नवीन रस होते है, वे नव-रस है और उनकी कोई गिनती नहीं हो सकती। लेकिन उन्होंने एक वर्गीकरण किया। उन्होने कारुण्य को एक रस माना। दुनिया में कहीं भी पाप देखकर सन्त पुरुष के हृदय में जो भाव पैदा होते है, वह करुणा का एक प्रकार है। दु खियों को देखकर हृदय में जो करुणा पैदा होती है, वह करुणा का दूसरा प्रकार है। अज्ञानी का अज्ञान देखकर

ज्ञानी के मन में जो करुणा पेदा होती है, वह करुणा का तीसरा प्रकार है। चाहे वह करुणा के रूप में पहचानी जाती हो, पर वह अलग-अलग वस्तु है। ज्ञानी के मन में अज्ञान निवृत्ति की जो प्रेरणा पेदा होती है, वह दूसरे ही प्रकार की करुणा है। वैसे ही शृंगार की बात लीजिये। शृंगार का अर्थ है—जहाँ प्रेम प्रकट होता है और हृदय की उदारता का परिचय होता है। जहाँ मनुष्य अपनी टूटी-फूटी बातों से दुनिया को सजाता है, दुनिया की शोभा बढ़ाता है, वहाँ भी शृंगार है। एक बगीचा बनानेवाला माली पौधों को पानी देता है, उनकी सेवा करता है, शोभा बढ़ाता है, तो वह भी शृंगार है। एक भक्त मूर्ति को सजाता है, तो वह भी शृंगार है। एक माता भूखे बच्चे को परोसती है, थाली सजाकर अतिथि के सामने रखती है, तो वह भी शृङ्गार है। चित्रकार सुन्दर चित्र खींचता है, तो वह भी शृङ्गार है। किसी व्यथित हृदय को समाधान देने के लिए कोई सुन्दर सितार बजाता है, तो वह भी शृङ्गार है। इस तरह शृङ्गार के अनेक प्रकार है। इसी तरह अन्य रसों के बारे में समझना चाहिए।

आनन्दानुभूति

यद्यपि नवरस माने गये है, फिर भी उनके अनेक प्रकार है। हमारे लिए वही प्रकार आदरणीय होगा, जिससे दुनिया के साथ एकरूप हो सकते है। अगर हम सपूर्ण आनन्द का पृथक्करण करें, तो मालूम होगा कि जिस अश में हम अपने को भूल जाते है, सारी दुनिया में लीन हो जाते है, उतने अश में आनन्द प्राप्त होता है। बच्चों को खेल में आनन्द मालूम होता है, क्योंकि वह खेल में अपने को भूल जाता है। मा बच्चे की सेवा में अपने को भूल जाती है, समाज-सेवक समाज-सेवा में अपने को भूल जाता है, इसलिए उन्हें आनन्द प्राप्त होता है। कवि को सृष्टि के दर्शन में आनन्द महसूस होता है, क्योंकि वह अपने को भूल जाता है।

उसी तरह जहाँ हम अपने को भूल जाते है और समष्टि मे लीन हो जाते है, वहाँ आनन्द हासिल होता है। वह समष्टि जितनी सकुचित होगी, उतना आनन्द भी सकुचित होगा। माता को बच्चे की सेवा करने म आनद महसूस होता है, परन्तु जिसमें वह लीन होती है, वह चीज छोटी सी है, इसलिए उसका आनन्द भी छोटा होता है। वह चीज जितनी व्यापक होती है, उतना ही आनन्द भी व्यापक बन जाता है। साहित्यिक ने कोई रस निर्माण किया और उसके परिणामस्वरूप वह साहित्यिक और उसके श्रोता जितने अश मे इस चोले क बाहर चले गये, भूल गय उतन अश में आनन्द हासिल होता है।

व्यसन और आनन्द

हम जब जेल म थे तब कुछ कैदियो को काम के लिए बाहर ले जाया जाता था। यद्यपि वे काम क लिए ही जाते थे और केदी क नात जाते थे, फिर दीवार के बाहर जाते थे इसलिए उन्हें आनद महसूस होता था। वैसे ही यह देह एक दीवाल है। किसी भी तरह हम उस दीवाल के बाहर जायँ, तो हमें आनद प्राप्त होता है। देहभाव से हम जितने अलग हो सकते ह, किसी भी उपाय से क्यो न हो, उतना आनद आता है। एक शराबी शराब पीता है, तो उसे आनद आता है। हम समझते है कि एक आत्मज्ञानी पुरुष ने देह को भूलने क लिए जैसे एक युक्ति निकाली है, वैसे ही उस शराबी की भी एक युक्ति है। इस तरह व्यसनी लोग भी सतपुरुषो की कोटि म आ जाते है, क्योकि वे भी व्यसनी है और ये भी व्यसनी ह। व्यसनी का अर्थ है, जो अपने को भूल जाते है और चित्त को दूसरी चीज में लीन करते है। बिना व्यसन के आनद नहीं आता।

नित्य नये घर का आनन्द

लोग पूछते है कि बाबा, इस तरह कब तक घूमा करोगे? लेकिन बाबा

को पैदल चलने का व्यसन हो गया है और यह उसे आनंद देता है। बाबा को रोज नया घर मिलता है और नये चेहरे दीखते हैं। बड़े सेठों के दस-पाँच मकान होते हैं बंबई, कलकत्ता, दिल्ली आदि में। उसे वैभवशाली माना जाता है। लेकिन बाबा को तो साल के ३६५ मकान मिलते हैं। बाबा को इतना आनंद इसलिए आता है कि बाबा अपने को भूल गया है और समाज-कार्य में लीन हो गया है। इसलिए उसे कोई थकान नहीं आती।

हजारों की हवा का उपभोग

कोई कहते हैं कि बाबा तपस्या कर रहा है, लेकिन उनका यह खयाल गलत है। तपस्या तो वे करते हैं, जिनके चेहरे पर आनंद नहीं दीखता। जो लोग गधे का बोझ ढोते हैं, रात-दिन मेहनत करते हैं, वे स्वार्थ साधने की कोशिश करते हैं। लेकिन सधता नहीं। वे स्वार्थी कहलाते हैं, लेकिन अनर्थी होते हैं। उन्हें कोई आनंद हासिल नहीं होता। बाबा को त्यागी कहते हैं, लेकिन बाबा बड़ा भोगी है। उसका स्टैण्डर्ड आफ लिविंग (जीवनमान) कितना ऊँचा है! बंबई में एक कोठड़ी में एक खिड़की के बदले दो हों, तो पचीस के बदले पचास रुपया किराया देना पड़ता है याने हवा के लिए किराया बढ़ता है। अब बाबा को तो हजारों रुपये की हवा मिलती है, उसका हवा का स्टैण्डर्ड बहुत बढ़ गया है। सुंदर हवा, सुंदर सूर्यकिरण हासिल होते हैं और इसे लोग तपस्या कहते हैं! जब से बाबा ने भू-दान शुरू किया है, तब से उसकी आयु बढ़ी है। खुली हवा में जितना वैभव और सारी सृष्टि का प्रेम हासिल होता है, उतना और कहीं हासिल नहीं होता। इसलिए किसान के जीवन से बढ़कर और कोई जीवन ही नहीं है, क्योंकि उसे सारी सृष्टि का पूरा लाभ मिलता है।

शहरवाले घाटे में रहते हैं

मेरी समझ में नहीं आता कि लोग शहरों में क्यों रहते हैं और उन्हें

वहाँ पर क्या सुख हासिल होता है ! शहरवाले एक आभास को ही सुख कहते है, परंतु कुल मिलाकर दु ख ज्यादा भोगते है और सुख कम; याने वे घाटे मे ही रहते हैं। चाहे कोई कवि हो या साहित्यिक; कारीगर हो या परिवार का कार्य करनेवाला सासारिक मनुष्य, सबके लिए आनद का साधन परमेश्वर ने परिपूर्ण निर्माण किया है। परतु हम वह समझते नहीं, अगर समझ सकते, तो दु ख नहीं होता। जीवन मे रस मालूम होता।

काव्यं रसात्मकम्

जिसके जीवन मे रस है, वह साहित्यिक है। "काव्यं रसात्मकम्।" जिसमें रस है, वह काव्य है। जीवन मे रस न हो, तो वह वाणी मे कैसे प्रकट होगा ? जो ऐसी अधूरी साधना करते है याने रसहीन जीवन से रसमय काव्य प्रकट करने की अपेक्षा करते है, वे कैसे सफल होंगे ? इसलिए जीवन रसमय, सगीतमय होना चाहिए। कोई वजह नहीं कि वाल्मीकि जैसा कवि आज क्यो न पैदा हो ? कुछ लोग कहते है कि विज्ञान के कारण काव्य घटा है, क्योकि विज्ञान से भ्रमनिरास होता है और साहित्य के लिए कुछ भ्रम की आवश्यकता होती है। यह खयाल गलत है कि विज्ञान जितना बढ़ेगा, उतना रस घटेगा, बल्कि वह तो बढ़ना चाहिए। वाल्मीकि को सृष्टि में जितना रसानुभव होता था, उससे हमें कम नहीं, बल्कि अधिक ही रसानुभव होता है। क्योंकि जिधर देखो उधर विज्ञान के कारण नयी शक्तियाँ प्रकट हो रही है। उससे दुनिया में गूढ़ता बढ़ी और ज्ञान भी बढ़ा है।

काव्य-प्रेरणा का काल

प्राचीनो के लिए दुनिया जितनी प्रकट थी, उससे ज्यादा अप्रकट हमारे लिए है। जो अज्ञानी होते है, उनके सामने दुनिया कुछ प्रकट और कुछ अप्रकट होती है। जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ता है, वैसे-वैसे, उसके साथ-साथ

अज्ञान की मात्रा भी बढ़ती और गूढ़ता भी बढ़ती है। ज्ञान के समान अज्ञान भी एक वैभव है। निद्रा एक किस्म का अज्ञान है। अज्ञानी से पूछा जाय कि तुझे क्या-क्या ज्ञान और अज्ञान है, तो वह कहेगा कि चंद बातों का ज्ञान और चंद बातों का अज्ञान है। लेकिन ज्ञानी से पूछा जाय, तो मालूम होगा कि उसका ज्ञान और अज्ञान, दोनों ज्यादा है। ज्ञानी का सिर्फ ज्ञान ही नहीं, बल्कि अज्ञान भी बढ़ा हुआ होता है। दुनिया की गुप्त और गूढ़ चीजों का खयाल या अज्ञान जितना वाल्मीकि को था, उससे ज्यादा हमें है। गूढ़ता का खयाल जितना बढ़ता है, उतना काव्य बढ़ता है। इसलिए इस जमाने में काव्य घटेगा, यह खयाल गलत है। आज दुनिया ज्यादा प्रकट और ज्यादा अप्रकट है। काव्य के लिए केवल प्रकटता की ही नहीं, बल्कि अप्रकटता की भी जरूरत होती है। केवल अंधकार नहीं, केवल प्रकाश नहीं, ऐसा बीच का काल काव्य के लिए हमेशा अनुकूल होता है। संधिकाल और उषःकाल में काव्य सूझता है। इसलिए हमारे पूर्वजों ने कहा है कि संधिकाल और उषःकाल में ध्यान करो, उससे स्फूर्ति मिलेगी। हम अपना अनुभव बताते हैं। हमने अपने जीवन में जो उत्तम-से-उत्तम साहित्य लिखा है, उसकी कल्पना उषःकाल में ही सूझी है।

इसलिए कवि वह है, जो बड़े सबेरे उठेगा और बड़े सवेरे वह उठ सकेगा, जो जल्दी सो जावेगा—इसलिए मैं व्याख्यान समाप्त करता हूँ।

हैदराबाद
६-२-'५६

महाराष्ट्र की आत्मा

संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य 'विश्वगुणादर्शचम्पू' में भारत की विभिन्न जातियों के गुण-दोषों का वर्णन है। उसमें महाराष्ट्र के बारे में कहा गया है, 'इस प्रदेश के लोग कविता का एक चरण भी लिखते हैं, तो व्यास बन जाते हैं; और पूरा श्लोक लिखने पर तो साक्षात् बृहस्पति ही।' इस प्रकार आज यहाँ इतने सारे बृहस्पति आ जुटे हैं।

'महा' महाराष्ट्र की पूँछ नहीं

भारत में अनेक प्रान्त हैं। हर प्रान्त अपने-अपने नाम के पीछे पूँछ लगाने लगा है। कोई 'विशाल' लगाता है, तो कोई 'महा'। पर 'महाराष्ट्र' नाम के पीछे कोई पूँछ नहीं है। उसमें का 'महा' शब्द तो उसके नाम का एक अंश ही है। अगर कल 'विशाल आन्ध्र' कहें, तो वह उसकी पूँछ बन जायगी। 'महागुजरात' कहें, तो वह भी पूँछ साबित होगी। इसीलिए महाराष्ट्रवालों ने तय किया कि अपना नाम बिना पूँछ का ही ठीक है। महाराष्ट्रवालों को यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि 'महा' शब्द उस नाम का एक अंश है। इसी तरह संस्कृत में विभिन्न प्रान्तों के लिए 'अंगेषु, वंगेषु, गुर्जरेषु' आदि भिन्न भिन्न नाम पाये जाते हैं। अगर उन्हें 'अंगे, वंगे, गुर्जरे' कहा जाय, तो वह गलत होगा। यानी उन प्रान्तों का बहुवचन चलता है, लेकिन 'महाराष्ट्र' का बहुवचन नहीं होता। उसका हमेशा 'महाराष्ट्रे' यह एकवचन ही होता है। 'महाराष्ट्रेषु' कहना गलत होगा। इसलिए सदा 'महाराष्ट्रे' ऐसा एकवचनान्त प्रयोग ही करना चाहिए।

इन दोनों बातों पर ध्यान दीजिये। 'महाराष्ट्र शब्द बहुवचन में प्रयुक्त नहीं हो सकता' इसका मतलब यही है कि महाराष्ट्र में विश्व-कल्याण के

सम्बन्ध में सभी एकमत है। इस बारे मे अनेक-मत इस मुल्क मे नहीं होते। दूसरी बात यह कि अन्य किसी भी राष्ट्र के साथ न जोडा जानेवाला 'महा' शब्द इससे जोडा गया है। इसका अर्थ यही है कि महाराष्ट्र एक राष्ट्र नही, बल्कि अनेक राष्ट्रो के समूह जैसी वृत्तिवाला है, जिसे अग्रेजी मे 'इण्टरनेशनल' (अन्तर्राष्ट्रीय) कहत है। 'महाराष्ट्र' से ऐसी उदारवृत्ति की आशा की जाती है, भले ही आज उसमे वह हो या न हो।

ध्यान रहे कि उपर्युक्त दोनो प्रकार के उत्तरदायित्व महाराष्ट्रीयो पर है। अगर हमारा अभिमान 'भारतीयता' की अपेक्षा सकुचित रहा, तो हम महाराष्ट्रीय क्या, राष्ट्रीय भी नहा, बल्कि 'अल्पराष्ट्रीय' ही साबित होंगे। 'मै भारतीय हूँ' कहने मे जितना व्यापक अभिमान होता है, उससे भी अधिक व्यापक भावना 'मै महाराष्ट्रीय हूँ' यह कहने मे होनी चाहिए। सारे राष्ट्र को व्याप्त करने की वृत्ति और उतनी ही बुद्धि तथा हृदय की व्यापकता भी होनी चाहिए। हमारे विचारो का दायरा कभी भी छोटा या सकुचित न होना चाहिए।

यह बात हमारे साहित्य मे स्पष्ट दीख पडती है। हम सबके आदि-गुरु, धर्म-सस्थापक ज्ञानदेव का 'ज्ञानेश्वरी' एक अजर-अमर ग्रन्थ है। इस भूमण्डल पर जब तक 'मराठी' भारती बनी रहेगी, तब तक यह ग्रन्थ कायम रहेगा, भले ही दूसरे कितने ही ग्रन्थ प्रकट हो या नष्ट हो जायँ। ज्ञानेश्वरी मे अत्यन्त व्यापक दृष्टि सिखलायी गयी है। कवि लिखता तो है मराठी में, पर कहता है कि मेरे इस ग्रन्थ से भगवान् प्रसन्न हो

'आता विश्वात्मकें देवें।
येणें वाग्यज्ञें तोषावें ॥'

—जो विश्वरूप भगवान् है, वह मेरे इस वाग्-यज्ञ से सन्तुष्ट हो। कवि ने यह कभी नहीं कहा कि 'पूना जिला या पढरपुर से आळन्दी* तक का प्रदेश

* पढरपुर' ज्ञानदेव का साधना स्थल और आळदी (पूना के निकट) समाधि-स्थल है।

प्रसन्न हों'; बल्कि यही कहा कि हम 'विश्वपति' की प्रार्थना करते हैं।

विश्व ही मेरा घर

लोकमान्य तिलक ने भी अपने 'गीतारहस्य' के समर्पण में ऐसा ही लिखा है : **'श्रीशाय जनतात्मने ।'** अर्थात् जनतात्मा परमेश्वर या जनता-जनार्दन को मैं यह ग्रन्थ समर्पित कर रहा हूँ। अवश्य ही यह एक उज्ज्वल और विशाल कल्पना है, पर ज्ञानदेव इससे भी आगे, इससे भी विशाल कल्पना करते हैं। **'आतां विश्वात्मकें देवें'** से अधिक व्यापक शब्द नहीं हो सकता। हमारे समय का जो महापुरुष होगा, वह लोकहितार्थ विहार करते समय मन में यही भावना रखेगा कि यह सारा विश्व ही मेरा घर है :

'हें विश्वचि माझें घर । ऐसी मति जयाची स्थिर ।।' अर्थात् मेरा घर कोई खास प्रान्त नहीं, कोई खास देश नहीं, वरन् सारा विश्व मेरा घर है। जो 'विश्व' से नीचे की भाषा बोलने के लिए प्रस्तुत हो, वह सच्चा महाराष्ट्रीय ही नहीं। अगर 'लक्ष्मी बेचारी बेर बीने' वाली कहावत चरितार्थ करनी हो, तो बात अलग है।

तुकाराम ज्ञानदेव का शिष्य था। उससे किसीने पूछा : 'आपका स्वदेश कौनसा है?' उसने उत्तर दिया : **'आमुचा स्वदेश । भुवनत्रयांमध्यें वास ।।'** अर्थात् हमारा स्वदेश तीनों लोक है। उसने यह कभी नहीं कहा कि 'मेरा स्वदेश पंढरपुर या देहू* है। ज्ञानदेव की तरह तुकाराम भारतभर घूमा नहीं, देहू में ही रहता था, किन्तु वह 'मेरा स्वदेश पूना जिले में या महाराष्ट्र में है' यह न कहकर 'भुवनत्रयांमध्यें वास' यही कहता है। इसे ही हम महाराष्ट्रीय भूमिका मानते हैं। ज्ञानदेव की यह शिक्षा और तुकाराम की यह वाणी ही महाराष्ट्रीय वृत्ति है।

---

* पंढरपुर तुकाराम का भी साधना-स्थल और 'देहू' निवास और समाधि-स्थल है।

महाराष्ट्र में जो संत हो गये, आज उनका मध्यमपदलोपी समास बन गया है। उसमें सारे संतों की गठरी बँध जाती और समन्वय हो जाता है। आज उन सबका एक छोटा-सा समास बन गया और वह है 'ज्ञानबा-तुकाराम'। महाराष्ट्र के इन्हीं आचार्यों, ज्ञानदेव और तुकाराम ने हमें महान् उदारवृत्ति सिखलायी और वही सच्ची महाराष्ट्रीय वृत्ति है। अतः पहली बात यह कि हमारी वृत्ति राष्ट्रीयता से ऊपर की होनी चाहिए, उससे नीचे की नहीं।

एक बार 'आजाद हिन्द फौज' के लोग पवनार में मुझसे मिलने आये। विदा होते समय उन्होंने 'जय हिन्द' का जयघोष किया। प्रत्युत्तर में मैंने कहा : 'जय हिन्द, जय दुनिया, जय हरि!' 'जय हिन्द' शब्द में भी खतरा हो सकता है, इसलिए 'जय दुनिया' कहा और दुनिया भी बुरे रास्ते जा सकती है, इसलिए 'जय हरि' शब्द जोड़ा। स्पष्ट है कि 'हरि' बुरे रास्ते कभी जा ही नहीं सकता। सारांश, महाराष्ट्र के साहित्य में ऐसी ही वृत्ति है कि वे ऐसा शब्द बोलते हैं, जो सारी दुनिया पर लागू होता है। ज्ञानदेव ने सिखाया :

'एका बोलिले हाय, सर्वांहि हित।'

—एक को बताया, पर लाभ सभीको हुआ। महाराष्ट्र कभी 'असर्व' की भूमिका ले नहीं सकता, वह सदा 'सर्वोदय' की ही भूमिका ले सकता है। 'सर्व' से नीचे की भूमिका लेना महाराष्ट्रीय बाना नहीं, यह आप भलीभाँति अन्तर में अंकित कर लीजिये।

और दूसरी बात यह कि हमारे प्रान्त का बहुवचन (अनेक मत) नहीं हुआ करता। महाराष्ट्र में ये दोनों गुण होने चाहिए। पर आज उस पर इसके विपरीत दो आक्षेप किये जाते हैं। पहला यह कि महाराष्ट्रीय लोग संकुचित प्रान्ताभिमान रखते हैं और दूसरा, ५० लोगों के ५१ मत होते हैं, जब कि हमारा बाना इससे बिलकुल विरुद्ध है। अधिक क्या, आप अपने सच्चे बाने के प्रति सजग हो जाइये, इतना ही हमारा कहना है।

संस्कृतियों का मेल

आप 'मराठवाडा' के लोग हैदराबाद में रहते है। आपके जीवन का एक 'मिशन' है। आपका जीवन एक यज्ञ-कार्य है। विभिन्न प्रान्त अलग किये जायँ, तो वहाँ का जन-व्यवहार जन भाषा में चले—यह एक सीधी सी बात है, इसमें कुछ भी सकुचितता नहीं। फिर भी हम चाहते है कि ये प्रान्त इन्द्रधनुष के रग जैसे बनें। भूगोल के नक्शे की तरह रेखा खीचकर नया रग और नया प्रान्त—एक पीला तो दूसरा लाल—बनाना हमे पसन्द नहीं। इन्द्रधनुष मे पहला रग कहाँ खतम हुआ और दूसरा कहाँ से शुरू हुआ, इसका पता नही चलता। अगर भूगोल के नक्शे की तरह प्रात-रचना की गयी, तो उन-उन भाषाओ के लोग त्रस्त करके निकाल दिये जायँगे और एक एक प्रात मे ठूँसे जायगे। इसलिए प्रत्येक भाषा के बहुत से लोग एक प्रात मे आ जायँ, तो भी काफी है, बाकी एक दूसरे प्रातों में परस्पर बँट जायँ। ऐसा होने पर परस्पर संस्कृतियों का मेल और सस्कारो का सुन्दर सगम हो जायगा।

महाराष्ट्र की विशेषता

हम अक्सर कहा करते है कि महाराष्ट्रीयो के बाने की विशेषता हमारे भक्ति-साहित्य मे दीख पडती है। कोई पूछते है कि 'महाराष्ट्र की विशेषता क्या है ?', तो कहा जाता है कि 'मराठीभाषी क्रोधी, उग्र, किञ्चित् कठोर, अडियल, एकाकी और झक्की होते है' आदि-आदि। पर वास्तव में महाराष्ट्र की विशेषता उसके भक्ति-मार्ग में ही है। ये परमेश्वर को 'माउली' (मैया) कहते है

'ये ग ये ग विठाबाई, माझे पढरीचे आई।'

ईश्वर को माउली या मैया कहनेवाले इन लोगों के अन्तर में निश्चय ही कोमलता होनी चाहिए। भगवान् को माँ कहनेवाले और भी अनेक लोग पाये जाते है, पर ज्ञानदेव ने एक जगह कमाल कर दिया

'तेथे प्रियाची परम सीमा, तो भेटे माउली आत्मा।' उसने अपनी आत्मा को माँ की उपमा दी है। अवश्य ही ईश्वर की मातृरूप से भक्ति करनेवाले कुछ भक्त है, पर ज्ञानदेव ने तो आत्मा को भी माता कहा है। आत्मा का अर्थ है, स्वय मै। इस तरह अपने स्वरूप को ही उसने माता की सज्ञा दे डाली, यह सचमुच कमाल कर दिया।

मातृ-वृत्ति रखें

साराश, आप सभी महाराष्ट्रीय जन माता जैसे है

'माउलीच्या मागें, बालकाची ओळ।'

माता के पीछे बच्चे रहते ही है। अत दुनिया के सभी लोगो को बच्चो जैसा और स्वय अपने आपको माता जैसा बनाना चाहिए। उसके लिए आज जो स्थिति चल रही है, उसे आमूल बदलना होगा। उसके लिए न तो अति-आग्रह ठीक होगा और न यह सकुचितता ही कि 'सारे एकभाषा भाषी लोग एक ही प्रान्त मे रहे।' इससे हमारी ही हानि होगी। अगर हमारे लोग दूसरे प्रान्त में रहेंगे, तो प्रचार के लिए उनकी जरूरत है ही। आप लोग यह समझे कि प्रचार-कार्य का भी मूल्य है, इसलिए मन को दुखी न करें। 'अरे, बेचारा बेलगॉव कर्नाटक में चला गया!' ऐसा न कहें, बल्कि यही सोचें कि यह आपत्ति नहीं, सपत्ति है।

अगर आप महाराष्ट्रीय होंगे, तो यह बात आपके ध्यान मे आ जायगी। ऐसा सस्कारयुक्त शहर कर्नाटक में रहेगा, तो वहाँ मराठी शाला, कॉलेज भी रहेगे। मराठी और कानडी भाषाओं की खूबियाँ और मिठास का आदान प्रदान होगा तथा परस्पर मेल रहेगा। यदि आप ऐसी व्यापक दृष्टि रखें, तो आपका बचाव होगा ही, भारत का और दुनिया का भी बचाव होगा। बम्बई, बेलगॉव, कोल्हापुर में जो काड हुए, वे महाराष्ट्र के लिए कभी भी शोभास्पद नहीं। महाराष्ट्र-वृत्ति के लिए वे कलक ही है, यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए। फिर भी अगर नहीं पहचानते, तो आप महाराष्ट्रीय नहीं, अत्यन्त अल्पराष्ट्रीय साबित होंगे।

सोचिये, क्या पण्डित नेहरू आज आपको भारतीय वृत्ति सिखलायें ? आपको तो उनको बताना चाहिए कि हमारी वृत्ति इससे कहीं आगे की है। हमारी वही वृत्ति है, जिसे 'अन्तरराष्ट्रीय वृत्ति' के नाम से पहचाना जाता है। इसके विपरीत वे हमें भारतीय वृत्ति का पाठ पढायें और हम मुँह लटकाकर उसे सुनें, यह शोभा नहीं देता। आखिर आज आप स्वतंत्र महाराष्ट्र प्रान्त बनाकर क्या करेंगे ? इस बारे में लोगों की जो कुछ कल्पनाएँ हैं, मध्ययुगीन, संकुचित, पुराने सड़े-गले या काई लगे हुए विचार हैं, वे विज्ञान के इस युग में टिक नहीं सकते। कारण वे न तो हमारी संस्कृति में हैं, न वृत्ति में और न साहित्य में ही। शिवाजी महाराज के जमाने में आज जैसे साधन न थे। आज कुछ ही घंटों में दिल्ली से रामेश्वर तक सरलता से जाया जा सकता है, पर उस जमाने में ऐसा नहीं था। फिर भी उनसे किसीने पूछा 'आप यह क्या कर रहे हैं ? तो शिवाजी महाराज ने यही उत्तर दिया कि 'हमने हिन्दू-धर्म के लिए यह फकीरी अख्तियार की है और हिन्दवी राज्य के लिए प्रयत्न कर रहे हैं।' हमें उनके इन वाक्यों पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए।

नाम उनका, काम आपका

आप ऐसी जगह रहते हैं, जहाँ सब प्रकार की भाषाएँ हैं। इसलिए मिल-जुलकर रहिये, जैसे दूध में शक्कर। किसीसे पूछा जाय कि 'क्या पी रहे हैं ?', तो वह कहता है . 'दूध पी रहा हूँ।' शक्कर का नाम कोई भी नहीं लेता, पर उसकी मिठास दूध में रहती ही है। इसलिए नाम का वृथा अभिमान मत रखिये। अपनी मिठास बनाये रखिये और उसे दूध में घुलने दीजिये। आज आप हैदराबाद के हैं, कल तेलंगाना हुआ, तो तेलंगाना के हो जायँगे और विशाल आंध्र हुआ, तो विशाल आंध्र के बन जायँगे। फिर भी मन में यह गाँठ बाँध लें कि हम राष्ट्रीय समूह के हैं, अल्पराष्ट्रीय नहीं। यहींके बनकर रहिये और मधुरता बढ़ाइये। नाम उनका और काम आपका—ऐसा होने दें।

आपका यह विशाल समुदाय भागा नगरी का है। हिन्दुस्तान की हर-एक नगरी आपकी है, पर इसके लिए आपको विशाल दृष्टि रखनी होगी। यदि हम संकुचित हुए, तो हमारा ही नुकसान होगा। इसलिए विशाल दृष्टि रखनी चाहिए। जो व्यापक दृष्टि रखेगा, वही अखिल भारत का सेवकत्व और नेतृत्व प्राप्त कर सकेगा। ध्यान रहे कि रवि बाबू बंगला के कवि थे, पर 'विश्वकवि' भी बन गये। उन्होंने काव्य बंगला में लिखा। एक 'गीताञ्जलि' को छोड दें, तो उनका सारा काव्य बंगला में है, फिर भी वे विश्वकवि बने। कारण उनके काव्य में लेशमात्र भी संकुचितता नहा है। उन्होंने जो संस्था स्थापित की, उसका भी नाम 'विश्वभारती' ही रखा। यह बात नहीं कि उनके काव्य की टक्कर का, उतना कला और भाव से पूर्ण काव्य और किसीने नहीं लिखा, पर सभी विश्वकवि नहा बन सके, भारत कवि नहीं बन पाये। इसका कारण है उनकी संकुचित वृत्ति।

महाराष्ट्रीयों में यह संकुचित वृत्ति पेशवाई के बाद से ही आयी। वह ज्ञानदेव और तुकाराम की वसीयत नहीं, पेशवाई की है। पर यह वसीयत अभिमानास्पद नहा। वह हमें नीचा दिखानेवाली है, ऐसा तो मैं नहा कहता, पर यह निश्चित है कि वह अभिमानास्पद कतई नहीं है।

हमें समझना चाहिए कि हम सब ज्ञानदेव के पुत्र है। मेरे मन में जो विचार उठे और उनकी जो पीडा है, वह आपके सामने रखी। मुझे विश्वास है कि हैदराबाद राज्य में आप अपनी सुगंधि और मधुरता फैलायेंगे। नम्र और निरहंकार वृत्ति से अपनी सुगंधि और मधुरता बढ़ने दीजिये। परमेश्वर आपको इसकी शक्ति दें। *

हैदराबाद
५-७-'५६

* मराठी भाषी साहित्यकारों के बीच मराठी में किये गये भाषण का अनुवाद।

(१) साहित्य में शृंगार की मर्यादा

प्रश्न—साहित्य में शृगार-वर्णन की मर्यादा क्या हो ? वाल्मीकि जैसे महाकवि को उर्मिला का इतना विस्मरण क्यों हुआ ?

उत्तर—इस प्रश्न की चर्चा शायद बंगाल से शुरू हुई है। "विस्मृता-उर्मिला" नाम का एक लेख गुरुदेव ने लिखा था। लक्ष्मण माँ के पास गये तो, परन्तु उर्मिला से नहीं मिले। यह ठीक है कि वे संयमी थे, लेकिन उर्मिला का विस्मरण नहीं होना चाहिए था। उस लेख के शायद ऐसे भाव थे। इसके बाद कुछ कवियों ने उस प्रसंग का वर्णन भी किया है। अगर उस वर्णन में अश्लीलता नही है, तो मैं उसमें दोष नहीं देखता।

लेकिन वाल्मीकि जैसे कवि, जिनकी बराबरी का कवि और नहीं, इस प्रसंग का जरा भी जिक्र नहीं करते, तो क्या सचमुच वह प्रसंग हुआ ही नहीं ? ऐसा नहीं है। लक्ष्मण उर्मिला से जरूर मिले होंगे, लेकिन कवि ने उर्मिला की मुलाकात को महत्त्व देने के बजाय लक्ष्मण की अनासक्ति और उसकी भक्ति तथा निष्ठा को महत्त्व देना उचित समझा। लक्ष्मण का वैराग्य बताने की दृष्टि से ही शायद कवि ने उर्मिला के साथ की भेंट का वर्णन नहीं किया। लक्ष्मण माता के पास भी गया, तो वहाँ से भी मानो वह छूट-कर आया है। अगर माता रोकती, तो भी वह नहीं रुकता। वह तो राम का भक्त था। लेकिन मातृ-प्रेम कितना अद्भुत था, यह बताने के लिए कवि ने उस प्रसंग का वर्णन किया है।

मेरी मान्यता है कि उर्मिला-लक्ष्मण मुलाकात के प्रसंग का वर्णन न करके भी वाल्मीकि ने उसका वर्णन कर दिया है। उस अभाव में भी वाल्मीकि की बहुत भारी कला प्रकट होती है।

अक्सर लोग उत्तान वर्णन को अश्लील समझते हैं। वह तो अश्लील है ही। लेकिन मेरे विचार में तो सूचन भी अश्लील है। पति-पत्नी का मर्यादित और सूचनात्मक वर्णन भी लाभदायक है, ऐसा मैं नहीं मानता।

संतति-निर्माण वैज्ञानिक विषय है और पति-पत्नी का सम्बन्ध पवित्र सम्बन्ध है। संतानोत्पत्ति धार्मिक भावना से ही होनी चाहिए। मैं तो दूसरी कल्पना ही नहीं कर सकता। बल्कि जैसे हम भूदान-यज्ञ के लिए भगवान् का स्मरण करके यात्रा का आरम्भ करते हैं, वैसे ही पति-पत्नी सम्बन्ध भी ऐसी पवित्र भावना से होना चाहिए और यदि समागम विफल हुआ, तो उसका दोनों को दुःख होना चाहिए। किसान तो केवल कर्तव्य समझकर ही दूसरी बार बोनी करता है। उसे पहली बोनी वृथा जाने का दुःख हुए बिना नहीं रहता। उसी तरह सन्तति-निर्माण के वास्ते दूसरी बार स्त्री-सम्बन्ध करना पड़े, तो पुरुष वैसा करेगा, लेकिन दुखी हृदय से, केवल कर्तव्य भावना से। यह भावना पैदा करना साहित्यिकों का काम है। लेकिन यह तो तब सम्भव है, जब साहित्यकारों के जीवन में वह चीज प्रकट हो।

(२) भूदान और साहित्यकार

प्रश्न—भूदान-यज्ञ के बारे में आप साहित्यकारों से क्या अपेक्षा करते हैं?

उत्तर—भूदान-यज्ञ की वैचारिक भूमिका का प्रचार करने के काम में साहित्यकार बहुत हाथ बँटा सकते हैं। यह कार्य इतना स्फूर्तिदायी है कि उसमें से कोई रामायण सहज प्रकट हो सकती है।

(३) साहित्यसेवी महिलाएँ और सेवा-कार्य

प्रश्न—क्या साहित्यसेवी स्त्रियाँ रचनात्मक कार्य में प्रत्यक्ष हिस्सा नहीं ले सकतीं?

उत्तर—क्यों नहीं ले सकतीं ? कितना अच्छा हो, अगर वे रचनात्मक कार्य में योग दें। उसका अर्थ होगा कि वे वाल्मीकि भी बनीं और राम की सेवा में भी दाखिल हुईं।

शहर में कितनी ही स्त्रियाँ दुखी, बीमार, बेरोजगार होती हैं। उन सबके पास उन्हें पहुँचना है, उनकी सेवा करनी है। अपनी माँ का मुझे स्मरण है कि जब किसीके यहाँ रसोई की अड़चन होती, तो वह स्वयं वहाँ पहुँच जाती और रसोई कर आती। अपने घर की रसोई पहले कर लिया करती थी। मैंने पूछा—"यह स्वार्थ क्यों ? पहले हमारे लिए पकाती हो, फिर उनके लिए।" माँ ने जवाब दिया—"यह स्वार्थ नहीं है, परमार्थ ही है। अगर पहले उनकी रसोई कर आऊँगी और बाद में तुम्हारी करूँगी, तो तुम्हें तो खाने के समय गरम रसोई मिलेगी, लेकिन उनके खाने के समय तक वह सबेरे की रसोई ठंडी हो जायगी।" यह तो मैंने एक मिसाल दी। स्त्रियों को पुरुष लोग थोड़ी फुरसत दें, तो वे कितना काम कर सकती हैं, इसकी कल्पना इससे की जा सकती है। एक और काम वे कर सकती हैं। अगर वे एक हरिजन बालक को अपने पास रख लें और अपने पुत्र की तरह उसे छोटे से बड़ा करें, तो यह कार्य एक हरिजन छात्रालय चलाने की अपेक्षा भी अधिक महत्त्व का और क्रान्तिकारी कार्य होगा। फिर चरखे और चक्की द्वारा वे घर में ग्रामोद्योग और परिश्रम-निष्ठा का वातावरण बना सकती हैं। वे देखेंगी कि उसमें उनकी प्रतिभा को भी विकास का काफी मौका मिलता है। अगर स्त्रियों को सार्वजनिक काम में हिस्सा लेना है, तो पुरुषों को उनके काम में हाथ बँटाना चाहिए। आज ऐसा लगता है कि उत्तरप्रदेश में पुरुष स्त्रियों को बिल्कुल गुलाम रखना ही जानते हैं।

(४) साहित्य के जरिये जीविकोपार्जन

प्रश्न—साहित्य के जरिये जीविकोपार्जन का औचित्य क्या है ?

उत्तर—हमें सीजर को सीजर का भाग देना चाहिए, और परमेश्वर को परमेश्वर का। शरीर को तो खिलाना ही चाहिए, लेकिन आत्मा को भी खिलाना चाहिए। यदि कोई मनुष्य सब कुछ समाज को समर्पण करके समाज से जो सहज प्राप्त हो सके, उसमें समाधान माने, तो वह बहुत ही अच्छा है। लेकिन अगर कोई मनुष्य साहित्य के जरिये अपनी आजीविका एक विशिष्ट मर्यादा में प्राप्त करे, तो उसमें भी कोई दोष नहीं है।

(७) दक्षिण की एक भाषा सीखिये

प्रश्न—राष्ट्रभाषा पर कुछ कहे।

उत्तर—अब हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा बना चुके है। परिणामत दूसरे प्रान्तवाले भी हिन्दी सीख रहे है। हिन्दी जाननेवाले अब केवल उत्तर भारतवाले ही नहीं रहेगे। दक्षिणवालो को हिन्दी सीखने मे कितना अधिक परिश्रम उठाना पडता है, इसकी कल्पना हम उत्तरवाले नहा कर सकते। हिन्दी मे जो लिंग-भेद है, वह दक्षिण मे कतई नहीं है। वहाँ अचेतन चेतन का भी भेद नहा। इसलिए जब हिन्दीवाले दीवार को स्त्रीलिंग और पत्थर को पुल्लिंग कहते है, तो वे लोग घबरा जाते है। फिर, अगर ऐसा हो कि छोटी वस्तु को स्त्रीलिंग मानें जैसे कटोरी ओर बडी को पुल्लिंग जैसे कटोरा, तो दीवार तो बहुत बडी है, ओर पत्थर छोटा है। उनकी दिक्कत इसलिए भी बढ जाती है कि अंग्रेजी में भी ऐसा लिंग-भेद नहीं है।

इसलिए हमारे हिन्दी के साहित्यिक भी दक्षिण भारत की एक भाषा सीखें, तो बहुत अच्छा होगा। मै खास तौर से तमिल सीखने की सिफारिश करूँगा। यह भाषा दो हजार वर्ष पुरानी है। उसका अपना सुन्दर व्याकरण है। हमारी भाषाओं के व्याकरण—हिन्दी, मराठी आदि के व्याकरण तो सौ-सौ वर्ष ही पुराने है, लेकिन तमिल का व्याकरण कम-से-कम उन्नीस सौ वर्ष पुराना है। तमिलवाले हिन्दी जोरो से सीख रहे है।

नतीजा यह है कि हिन्दी के अच्छे-अच्छे ग्रन्थो का तमिल में अनुवाद हो रहा है। लेकिन तमिल के ग्रन्थो का हमें पता नही लगता।

और अगर ऐसा ही रहा कि हम तो उनकी भाषा सीखें नहीं और वे हमारी भाषा सीखते ही रहें, तो अंग्रेजी के बारे में जो विरोध की भावना लोगो के हृदय में पैदा हो गयी थी, वैसी ही भावना हिन्दी के बारे में भी हो सकती है। आज हिन्दी भाषा के ज्ञान के बारे मे आपके मामूली-से-मामूली आदमी की बराबरी करने के लिए उनके बडे-से-बडे आदमी को दस-दस, पॉच-पॉच साल मेहनत करनी पडती है। यह कोई अच्छी बात नहीं है। इसलिए हमे अपनी भाषा मे, उसके व्याकरण मे अखिल भारत की दृष्टि से सुधार करने चाहिए। इसलिए मेरा कहना है कि जब लोग उनकी एक भाषा सीख लेंगे, तो हमें उनकी दिक्कतो का पता चलेगा और हमारा मन हिन्दी में सुधार के लिए अनुकूल होगा।

भाषा सीखने की यह बात मै किसीके लिए लाजिमी नहा करना चाहूँगा, क्योंकि यह सब प्रेम से होना चाहिए। काशी और प्रयाग में दक्षिण के कितने ही लोग निवास करते है। उनसे हमारे सम्बन्ध बॅधें और बढ़ें, तो उन्हे अच्छा तो लगेगा ही, हमें भी लाभ होगा। वेलूर जेल मे कदम रखते ही मैंने तमिल पढना शुरू किया। लोगो को अचरज हुआ। वहाँ दक्षिण के चारो प्रान्तो के लोग जमा थे, लेकिन वे भी आपस मे अंग्रेजी में ही बोलते थे। मैंने तमिल सीखना शुरू किया। हमारे तमिल के गुरुजी ने कहा, "आपने इस जेल में आकर तमिल की इज्जत बढ़ा दी।" आज मे दक्षिणवालो के दिलो मे अपने प्रति जो प्रेम और श्रद्धा का अनुभव करता हूँ, उसका कुछ श्रेय मेरे तमिल-प्रेम को ही है।

(६) भूमि-क्रान्ति की मूर्ति

प्रश्न—आपने कहा है कि यहाँ पर भूमि-क्रान्ति होगी, तो इसका स्पष्ट दर्शन, स्पष्ट चित्र क्या होगा ?

उत्तर—अभी तो हम शान्त होना चाहते हैं। यह तो आप सब लोग ढूँढ़ सकते हैं, यह आपका काम है, गोता लगाकर ढूँढ़ निकालें। हमारी एक श्रद्धा है और वह हमने आपके सामने रखी है ? आपको शायद ऐसी बात सूझेगी, जो हमें न सूझी हो। एक वैज्ञानिक को पूरा दर्शन नहीं होता है। एक दार्शनिक को पूरा दर्शन नहीं होता। वह दूसरे को हो सकता है। भूदान का पूरा दर्शन हमें ही हुआ है, यह तो हम नहीं कह सकते। दूसरे को भी इसका दर्शन हो सकता है। इसलिए आप ही सोचिये और कल्पना कीजिये।

सबका सोचने का ढंग अलग होता है। एक ब्रह्मवादी कहता है कि एक ब्रह्म है। परन्तु सगुण चिन्तन करनेवाले के पास तो पचासों प्रकार के देवता होते हैं। कुछ एक मुखवाले देवता, कुछ पांच मुखवाले देवता, कुछ हाथी के मुखवाले देवता, कुछ चार हाथवाले देवता, कुछ आठ हाथवाले देवता होते हैं। यह सारी सृष्टि साहित्यिकों की है, इसलिए आप ही देख लीजिये और चाहे जैसा रूप दीजिये।

(७) 'दान' शब्द क्यों ?

प्रश्न—'दान' शब्द का इस्तेमाल क्यों किया जाता है ?

उत्तर—शब्दों की एक महिमा होती है। दान एक बड़ा ही पवित्र शब्द है। सामान्य लोग तो शब्दों के रूढ़ अर्थ को ही देखते हैं, लेकिन जो प्रतिभावान् होते है, कवि होते हैं, वे शब्दों का मूल ध्यान में लेते हैं, रूढ़ अर्थ नही। मूल अर्थ देखा जाय, तो दान एक बहुत पवित्र शब्द है। दान का मतलब उपकार नहीं है। "दानम् समविभागः" शंकराचार्य ने दान का अर्थ बताया है—"सम्यक् विभाजनम्।" यह अर्थ शंकराचार्य ने भी अपने दिमाग से निकाला है, ऐसी बात नहीं है। उनके पहले भी यह बात थी। बुद्ध भगवान् के नाम पर उनके शिष्यों ने एक बात कही है, जिसमें कहा गया है कि जिसे हम 'दान' कहते हैं, उसे भगवान् बुद्ध

'सम विभागः' कहते हैं। "यं संविभागं भगवा अवण्णी।" लेकिन यह बुद्ध भगवान् की बात थी, ऐसा नहीं है। उनके पहले भी यह बात वेदों में आयी है। वेदों में भाष्यकारों ने लिखा है कि **'दानम् समविभागः'** दान माने सतत देते ही रहना चाहिए। आज तो हम लेते ही रहते हैं, लेकिन भगवान् ने हमें हाथ दिये हैं देने के लिए। **"हाथ दिये कर दान रे"**– हाथ छीनने के लिए नहीं दिये हैं। छीनने के लिए तो दाँत और नाखून काफी हैं। इसलिए अगर हाथों से छीनने का काम लिया जाय, तो भगवान् अगले जन्मों में हमें चतुष्पाद प्राणी बनायेगा। इसलिए हाथ तो भगवान् की बहुत बड़ी और पवित्र देन है।

"दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।" हाथ की शोभा दान से है, कंकण से नहीं। इसका मतलब है कि संग्रह में हाथ की शोभा नहीं है। देने में ही शोभा है। इसलिए सतत देते रहना चाहिए। गीता ने कहा है कि यज्ञ, दान और तप, यह त्रि-विषयक्रिया सतत चलनी चाहिए। दान का मतलब 'डोनेशन' नहीं है। दान का मतलब है, धर्म। हिन्दुस्तान में 'दान करो' के बदले 'धर्म करो' भी कहा जाता है। माने, धर्म और दान पर्यायवाची शब्द हैं। आज उस शब्द का कुछ दूसरा अर्थ रूढ हो गया है। परन्तु यह शब्द कमजोर नहीं है। वैसे आज तो कितने ही अच्छे शब्दों को बिगाडा गया है; जैसे, वैराग्य। कहते हैं कि किसीको बीबी पर क्रोध आया, तो वह घर छोड़कर निकला और उसको वैराग्य हो गया। लेकिन यह भी भग्न वैराग्य का कोई लक्षण है? इस तरह हमने शब्दों को भ्रष्ट किया है। लेकिन हमारे पास जो अच्छे-से-अच्छे शब्द हैं, वे हमारे शस्त्र हैं। उनको हम नहीं खोयेंगे। दान का मतलब है, अपने पास जो कुछ है, वह देना और यज्ञ का मतलब है कि अपने पास जो कुछ है उसे छोड़ना, उसका त्याग करना। यज्ञ और दान—ये दोनों प्रक्रियाएँ समाज में चलती रहनी चाहिए।